मैथिली गीता
(श्रीमद्भगवद्गीताक **मैथिली** रूपान्तर)

पहिल अध्याय : विषादयोग

धृतराष्ट्र बजलाह–
हौ संजय! धर्मभूमि कुरुक्षेत्र मे युद्धक उत्सुक एकत्रित हमर आ पाण्डुक पुत्र सभ की केलन्हि?।।१।।

संजय बजलाह–
ओहि समय राजा दुर्योधन व्यूहरचनायुक्त पाण्डवक सेना देखलन्हि आ द्रोणाचार्य लग जा ई वचन कहलन्हि ।।२।।

यौ आचार्य! अहांक बुद्धिमान शिष्य द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न द्वारा व्यूहाकार ठाढ़ कएल पाण्डुपुत्र सभक एहि विशाल सेना कँ देखल जाए!।।३।।

एहि सेना मे पैघ–पैघ धनुषधारी एवं युद्ध मे भीम आ अर्जुन जकाँ शूरवीर सात्यकि आ विराट तथा महारथी राजा द्रुपद, धृष्टकेतु आ चेकितान आ बलबान काशिराज, पुरुजित, कुन्तिभोज आ मनुष्य मे श्रेष्ठ शैव्य, पराक्रमी युधामन्यु तथा द्रौपदीक पाँचो पुत्र आ बलबान उत्तमौजा, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु–ई सभ महारथी छथि।।४–६।।

यौ ब्राह्मणश्रेष्ठ! अपनहुँ पक्ष मे जे प्रधान छथि हुनकहुँ अहाँ बुझि लियऽ। अपनेक जानकारी लेल हमर सेनाक जे–जे सेनापति छथि, हुनकहुँ बतबैत छी।। ७ ।।

अहाँ द्रोणाचार्य आ भीष्मपितामह आ कर्ण आ संग्रामविजयी कृपाचार्य आ ओहिना अश्वत्थामा, विकर्ण आ सोमदत्तक पुत्र भूरिश्रवा।।८।।

आओरो हमरा लेल जीवनक आशा तजि देनिहार बहुत रास शूरवीर अनेक प्रकारक शस्त्रास्त्र सब सँ सुसज्जित आ सब–के–सब युद्ध मे चतुर छथि।। ९।।

भीष्मपितामह द्वारा रक्षित हमर सभक ई सेना सब प्रकार सँ अजेय अछि आ भीम द्वारा रक्षित हुनका लोकनिक सेना जीतए मे सुगम अछि।।१०।।

एहि हेतु सभ मोर्चा पर अपना–अपना जगह स्थित रहैत अहाँ सब निःसंदेह भीष्मपितामहक सब दिश सँ रक्षा करी।।११।।

कौरव मे वृद्ध बड्ड प्रतापी भीष्म ओहि दुर्योधनक ह्रदय मे हर्ष उत्पन्न करैत उच्च स्वर सँ सिंहक दहाड़ जकाँ गरजि शंख बजौलन्हि।।१२।।

एकर बाद शंख आ नगाडा आ ढ़ोल, मृदंग आ नरसिंहा आदि बाजा एक संगहिं बाजि उठल। ओहि सभक ओ शब्द बड्ड भयंकर भेल।।१३।।

एकर बाद उज्जर घोड़ा सँ युक्त उत्तम रथ मे बैसल श्रीकृष्ण महाराज आ अर्जुन सेहो अलौकिक शंख बजौलन्हि।।१४।।

श्रीकृष्ण महाराज पांचजन्य नामक आ अर्जुन देवदत्त नामक आ भयानक कर्मवला भीम पौण्ड्र नामक महाशंख बजौलन्हि।।१५।।

कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर अनन्तविजय नामक आ नकुल आ सहदेव सुघोष आ मणिपुष्पक नामक शंख बजौलन्हि ।।१६।।

श्रेष्ठ धनुषधारी काशिराज आ महारथी शिखण्डी एवं धृष्टद्युम्न तथा राजा विराट आ अजेय सात्यकि, राजा द्रुपद, आ द्रौपदीक पांचो बेटा आ पैघ भुजाबला सुभद्रापुत्र अभिमन्यु–ई सभ यौ राजन! सभ दिश सँ अलग–अलग शंख बजौलन्हि।।१७–१८।।

आ ओ भयानक शब्द आकाश आ पृथ्वी कँ गुंजायमान करैत धार्तराष्ट्र अर्थात् अहांक पक्षक लोक सभक ह्रदय विदीर्ण कए देलक।।१९।।

यौ राजन! एकर बाद कपिध्वज अर्जुन मोर्चा बान्हि डटल धृतराष्ट्रक सम्बन्धी सभ कँ देखि कए, ओहि शस्त्र चलेबाक तैयारीक समय धनुष उठाकए ह्रषीकेश कृष्ण महाराज सँ ई वचन कहलन्हि–यौ अच्युत! हमर रथ कँ दूनू सेनाक बीच मे ठाढ़ करू।।२०–२१।।

आओर यावत हम युद्धक्षेत्र मे डटल युद्धक अभिलाषी एहि विपक्षी योद्धा सभ कँ नीकजकाँ देखि ली जे एहि युद्धरूप व्यापार मे हमरा किनका–किनका संग युद्ध केनाइ अछि, तावत ओकरा ठाढ़ राखू।।२२।।

दुर्बुद्धि दुर्योधनक युद्ध मे हित चाहनिहार जे–जे ई राजा सभ एहि सेना मे अएलाह अछि, एहि युद्ध केनिहार सभ कँ हम देखब।।२३।।

संजय बजलाह–

यौ धृतराष्ट्र! अर्जुन द्वारा एहि प्रकार कहला पर महाराज श्रीकृष्णचन्द्र दूनू सेनाक बीच मे भीष्म आ द्रोणाचार्यक सामने आ सभ राजा सभक सामने उत्तम रथ कँ ठाढ़ कए एहि प्रकार कहलन्हि –हौ पार्थ! युद्धक लेल जमा भेल एहि कौरव सभ कँ देखऽ।।२४–२५।।

एकर बाद पृथापुत्र अर्जुन ओहि दूनू सेना मे विराजमान कक्का सभ कँ, पितामह–प्रपितामह सभ कँ, गुरुजन कँ, बेटा–मामा सभ कँ, पौत्र सभ कँ, आ मित्र सभ कँ, श्वशुर सभ कँ आ सुह्रद सभ कँ सेहो देखि ओ कुन्तीपुत्र अर्जुन अत्यन्त करूणा सँ युक्त शोक करैत ई वचन बजलाह–

अर्जुन बजलाह–

यौ कृष्ण! युद्धक्षेत्र मे डटल युद्धक अभिलाषी एहि स्वजन समुदाय कँ देखि हमर अंग शिथिल भेल जा रहल अछि आ मुँह सुखि रहल अछि आ हमर शरीर मे कम्पन आ रोमांच भए रहल अछि।। २६–२९।।

हाथ सँ गाण्डीव धनुष खसि रहल अछि आ त्वचा सेहो बहुत जरि रहल अछि, आ हमर मन भ्रमित सन लागि रहल अछि; तैँ हम ठाढ़ रहए मे समर्थ नहिं छी।।३०।।

यौ केशव! हम लक्षण सभ कँ सेहो विपरीत देखि रहल छी आ युद्ध मे स्वजन समुदाय कँ मारि कए कल्याण सेहो नहिं देखैत छी।।३१।।

यौ कृष्ण! हम ने विजय चाहैत छी आ ने राज्य आ सुख सभ। यौ गोविन्द! हमरा एहेन राज्य सँ की प्रयोजन अछि अथवा एहेन भोग आ जीवनहिं सँ की लाभ अछि?।।३२।।

हमरा जिनका लेल राज्य, भोग आ सुख सभ अभीष्ट अछि, वैह धन आ जीवनक आशा छोडि युद्ध मे ठाढ़ छथि।।३३।।

गुरुजन, कक्का सभ, बेटा सभ आ तहिना पितामह सभ, श्वशुर सभ, पौत्र सभ आ आओरो सम्बन्धी सभ छथि।।३४।।

यौ मधुसूदन! हम जिनका सभ कैँ तीनू लोकक राज्यहुँ कैँ लेल मारए नहिं चाहैत छी (यद्यपि ओ हमरा मारिओ देथि) तखन एहि पृथ्वीक लेल के कहए?।। ३५।।

यौ जनार्दन! धृतराष्ट्रक पुत्र सभ कैँ मारि कए हमरा सभ कैँ की प्रसन्नता भेटत? एहि आततायी सभ कैँ मारि कए त हमरा सभ कें पापहिं लागत।।३६।।

तैँ यौ माधव! अपनहिं भैयारी धृतराष्ट्रक पुत्र सभ कैँ मारक लेल हम योग्य नहिं छी; किएक तैँ अपनहिं कुटुम्ब कैँ मारि कए हम सभ केना सुखी होएब?।।३७।।

यद्यपि लोभ सँ भ्रष्टचित्त भेल ई सभ लोक कुलक नाश सँ उत्पन्न दोष कैँ आ मित्र सभक विरोध करए मे पाप कैँ नहिं देखैत छथि, तैयोऽ यौ जनार्दन! कुलक नाश सँ उत्पन्न दोष कैँ जननिहार हमरा सभ कैँ एहि पाप सँ हँटए लेल किएक नहिं विचार करक चाही?।।३८–३९।।

कुलक नाश सँ सनातन कुल–धर्म नष्ट भए जाइत अछि, धर्मक नाश भेला पर सम्पूर्ण कुल मे पापहुँ बहुत पसरि जाइत अछि।।४०।।

यौ कृष्ण! पाप कैँ अधिक बढ़ि गेला सँ कुलक स्त्रीगण अत्यन्त दूषित भए जाइत छथि आ यौ वार्ष्णेय! स्त्रीगणक दूषित भेला पर वर्णसंकर उत्पन्न होइत छथि।।४१।।

वर्णसंकर कुलाघाती सभ कैँ आ कुल कैँ नरक मे लए जाइए लेल होइत छथि। लुप्त भेल पिण्ड आ जलक क्रियाबला अर्थात् श्राद्ध आ तर्पण सँ वंचित हिनक पितर लोकनि सेहो अधोगति कैँ प्राप्त होइत छथि।।४२।।

एहि वर्णसंकरकारक दोष सँ कुलाघाती सभ कैँ सनातन कुल–धर्म आ जाति–धर्म नष्ट भए जाइत अछि।।४३।।

यौ जनार्दन! जिनक कुल–धर्म नष्ट भए गेल छैन्हि, एहेन मनुष्य सभ कैँ अनिश्चितकालतक नरक मे वास होइत अछि, एहेन हम सुनैत अएलहुँ अछि।।४४।।

हा शोक! हम सभ बुद्धिमान भइयो कऽ महान पाप करए लेल तैयार भए गेलहुँ अछि जे राज्य आ सुख कँ लोभ सँ स्वजन सभ कैँ मारए लेल उद्यत भए गेलहुँ अछि।। ४५।।

यदि शस्त्रक बिना आ प्रतिकार नहिं करएवला हमरा, हाथ मे शस्त्र लेने धृतराष्ट्रक पुत्र युद्ध मे मारि देथि, तइयो ओना हमरा मारब सेहो हमरा लेल बेसी कल्याणकारक होएत।।४६।।

संजय बजलाह–

रणभूमि मे शोक सँ उद्विग्न मनबाला अर्जुन एहि प्रकार कहि, वाण सहित धनुष कैँ छोड़ि रथक पाछाँ भाग मे बैसि गेलाह।।४७।।

एना भगवान द्वारा गायल उपनिषद, बह्मविद्या, योगशास्त्र मे, श्रीकृष्ण आ अर्जुनक बीच भेल संवाद ***विषादयोग*** *नामक* ***पहिल अध्याय*** *समाप्त भेल।*

दोसर अध्याय : सांख्ययोग

संजय बजलाह़—

ओहि प्रकार करुणा सँ भरल आ नोर सँ परिपूर्ण आ व्याकुल आँखिबला आ शोकयुक्त ओहि अर्जुनक प्रति भगवान मधुसूदन ई वचन कहलन्हि—।।१।।

श्री भगवान बजलाह़—

हौ अर्जुन! तोरा असमय मे ई मोह कोन कारण सँ भेलह अछि? कियैक तऽ नहिंए ई श्रेष्ठ पुरुष सभ द्वारा आचरित अछि, नहिंए ई स्वर्ग कैँ देमबला अछि आ नहिंए कीर्ति देमबला अछि।।२।।

तैँ हौ अर्जुन! नपुंसकता कैँ नहिं प्राप्त होमह। तोरामे ई उचित नहिं जानि पड़ैत अछि। हौ परंतप! ह्रदयक तुच्छ दुर्बलता कैँ छोड़ि युद्धक लेल ठाढ़ भए जाह।।३।।

अर्जुन बजलाह़—

यौ मधुसूदन! हम रणभूमि मे केना वाण सभ सँ भीष्मपितामह आ द्रोणाचार्यक विरुद्ध लड़ब? कियैक तऽ यौ अरिसूदन! ओ दूनू पूजनीय छथि।।४।।

तैँ एहि महानुभाव गुरुजन सभ कैँ नहिं मारि कए एहि लोक मे हम भीखक अन्नहु खेनाइ कल्याणकारक बुझैत छी कियैक तऽ गुरुजन सभ कैँ मारियो कए एहि लोक मे शोणित सँ सानल अर्थ आ कामरूप भोगहिं के तऽ भोगब।।५।।

हम इहो नहिं जनैत छी जे हमरा लेल युद्ध करब वा नहिं करब—एहि दूनू मे कोन श्रेष्ठ अछि अथवा इहो नहिं जनैत छी जे हुनका सब कैँ हम सभ जीतब वा ओ सभ हमरा सभ कैँ जितताह। आ जिनका मारि कए हम सभ जिबहो नहिं चाहैत छी, वैह सभ हमर सभ कैँ आत्मीय धृतराष्ट्रक पुत्र हमरा सभक प्रतिद्वन्द्विता मे ठाढ़ छथि।।६।।

तैँ कायरतारूप दोष सँ उपहत भेल स्वभावबला आ धर्मक विषय मे मोहचित्त भेल हम अहाँ सँ पूछैत छी जे साधन निश्चित कल्याणकारक हुए, वैह हमरा लेल कही कियैक तऽ हम अहाँक शिष्य छी, तैँ अहाँक शरण मे आएल हमरा शिक्षा दियऽ।।७।।

कियैक तऽ भूमि मे निष्कंटक, धन—धान्य सम्पन्न राज्य कैँ आओर देवता सभक स्वामित्वहुँ कैँ प्राप्त भइयो कऽ हम ओहि उपाय कैँ नहिं देखैत छी जे हमर इन्द्रिय सभ कें सुखा देइबला शोक कैँ दूर कऽ सकए।।८।।

संजय बजलाह —

यौ राजन्! निद्रा कैँ जीतनिहार अर्जुन अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराजक प्रति एहि प्रकार कहि फेर श्रीगोविन्द भगवान सँ, 'युद्ध नहिं करब' ई स्पष्ट कहि चुप भए गेलाह।।६।।

यौ भरतवंशी धृतराष्ट्र! अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराज दूनू सेनाक बीच मे शोक करैत ओहि अर्जुन कैँ हंसैत सन ई वचन बजलाह़—।।१०।।

श्रीभगवान बजलाह़—

हौ अर्जुन! तूँ नहिं शोक करए योग्य मनुष्य सभ लेल शोक करैत छह आ पण्डित सभ सन वचन कहैत छह, किन्तु जिनक प्राण चलि गेल छैन्हि, उनका लेल आ जिनक प्राण नहिं गेल छैन्हि, हुनका लेल सेहो पण्डितजन शोक नहिं करैत छथि।।११।।

नहिंए एहेन अछि जे हम कोनो काल मे नहिं छलहुँ, तूँ नहिं छलह अथवा ई राजा लोकनि नहिं छलाह आ नहिंए एहेन अछि जे एकर आगाँ हम सभ नहिं रहब।।१२।।

जेना जीवात्माक एहि देह मे नेनपन, यौवन आ वृद्धावस्था होइत अछि तहिना आन शरीरक प्राप्ति होइत अछि, ओहि विषय मे धीर पुरुष मोहित नहिं होइत छथि।।१४।।

हौ कुन्तीपुत्र! जाड़—गर्मी आ सुख—दु:ख देमएबला इन्द्रिय आ विषय सभक संयोग तऽ उत्पत्ति—विनाशशील आ अनित्य अछि, तैँ हौ भारत! एहि सभ कैँ तूँ सहन करऽ।।१४।।

कियैक तऽ हौ पुरुषश्रेष्ठ! दु:ख—सुख कैँ समान बुझएबला जाहि धीर पुरुष कैँ इन्द्रिय आ विषयक संयोग व्याकुल नहिं करैत छैन्हि, ओ मोक्षक योग्य होइत छथि।।१५।।

असत् वस्तुक सत्ता नहिं अछि, आ सत्क अभाव नहिं अछि। एहि प्रकार एहि दुनुकहिं तत्व तत्त्वज्ञानी पुरुष सभ सँ देखल गेल अछि।।१६।।

नाशरहित तऽ तूँ हुनका जानह जिनका सँ ई सम्पूर्ण जगत—दृश्यवर्ग व्याप्त अछि। एहि अविनाशीक विनाश करए मे कियो समर्थ नहिं अछि।।१७।।

एहि नाशरहित, अप्रमेय, नित्यस्वरूप जीवात्माक ई सभ शरीर नाशवान् कहल गेल अछि। तैँ हौ भरतवंशी अर्जुन! तूँ युद्ध करऽ।।१८।।

जे एहि आत्मा कैँ मारएबला बुझैत छथि आ जे एकरा मरल मानैत छथि ओ दूनू अबूझ छथि; कियैक तऽ ई आत्मा वास्तव मे नहिंए ककरो मारैत अछि आ नहिंए ककरो द्वारा मारल जाइत अछि।।१६।।

ई आत्मा कोनो काल मे ने जन्म लैत अछि आ ने मरिते अछि आ ने ई उत्पन्न भए फेर होइएबला अछि; कारण ई अजन्मा, नित्य, सनातन आ पुरातन अछि, शरीर कैँ मारल गेलो पर ई नहिं मारल जाइत अछि।।२०।।

हौ पृथापुत्र अर्जुन! जे पुरुष एहि आत्मा कैँ नाशरहित, नित्य, अजन्मा आ अव्यय जनैत छथि, ओ पुरुष केना ककरो मरबैत छथि आ केना ककरा मारैत छथि?।।२१।।

जेना मनुष्य पुरान वस्त्र कैँ त्याग कए दोसर नव वस्त्र कैँ धारण करैत छथि, तहिना जीवात्मा पुरान शरीर कैँ त्यागि दोसर नव शरीर कैँ प्राप्त होइत छथि।।२२।।

एहि आत्मा कैँ शस्त्र नहिं काटि सकैत अछि, एकरा आगि नहिं जरा सकैत अछि, एकरा जल नहिं गला सकैत अछि आ वायु नहिं सुखा सकैत छथि।।२३।।

कियैक तऽ ई आत्मा अछेद्य अछि, ई आत्मा अदाह्य, अक्लेद्य आओर निःसंदेह अशोष्य अछि आ ई आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, अचल, स्थिर रहएबला आ सनातन अछि।।२४।।

ई आत्मा अव्यक्त अछि, ई आत्मा अचिन्त्य अछि आ ई आत्मा विकाररहित कहल जाइत अछि। तैँ हौ अर्जुन! एहि आत्मा कैँ उपर्युक्त प्रकार सँ जानि कए तूँ शोक करक योग्य नहिं छऽ ।।२५।।

किन्तु यदि तूँ एहि आत्मा कैँ सदा जनमएबला आ सदा मरएबला मानैत छऽ तैयो हौ महाबाहो! तूँ एहि प्रकार शोक करक योग्य नहिं छऽ।।२६।।

कियैक तऽ एहि मान्यताक अनुसार जनमल कैँ मृत्यु निश्चित अछि आ मरल कैँ जन्म निश्चित अछि। तैँ सेहो एहि बिना उपायबला विषय मे तूँ शोक करक योग्य नहिं छऽ।।२७।।

हौ अर्जुन! सम्पूर्ण प्राणी जन्म सँ पहिले अप्रकट छलथि आ मरलाक बाद सेहो अप्रकट भए जाइबला छथि, फेर एहेन स्थिति मे किएक शोक कएल जाए?।।२८।।

कोनो एक महापुरुष एहिं आत्मा कैँ आश्चर्य जकाँ देखैत छथि आ ओहिना दोसर कोनो महापुरुष एकर तत्त्वक आश्चर्य जकाँ वर्णन करैत छथि आ दोसर कोनो अधिकारी पुरुषहिं एकरा आश्चर्य जकाँ सुनैत छथि आ कियो–कियो तऽ सुनियो कऽ एकरा नहिं जनैत छथि।।२९।।

हौ अर्जुन! ई आत्मा सभक शरीर मे सदैव अवध्य अछि। एहि कारण सँ सम्पूर्ण प्राणीक हेतु तूँ शोक करक योग्य नहिं छऽ।।३०।।

आओर अपन धर्म कैँ देखियो कऽ तूँ भय करक योग्य नहिं छऽ अर्थात् तोरा भय नहिं करक चाही किएक तऽ क्षत्रिय कैँ लेल धर्मयुक्त युद्ध सँ बढ़ि कए दोसर कोनो कल्याणकारी कर्तव्य नहिं छैक।।३१।।

हौ पार्थ! अपने–आप भेटल आ खुजल स्वर्गक द्वाररूप एहि प्रकारक युद्धक अवसर भाग्यवान क्षत्रिय लोकनिए कैँ भेटैत छैन्हि।।३२।।

किन्तु तूँ यदि एहि धर्मयुक्त युद्ध कैँ नहिं करबह तऽ स्वधर्म आ कीर्ति कैँ नहिं पाबि पापी हेबऽ।।३३।।

आओर सभ लोक बहुत काल धरि रहएबला अपकीर्तिक सेहो कथन करथुन्ह आ मानवीय पुरुषक लेल अपकीर्ति मरणहुँ सँ बढ़ि कए अछि।।३४।।

आओर जिनका दृष्टि मे तूँ पहिने बहुत सम्मानित भए आब लघुता कैँ प्राप्त होएबऽ, ओ महारथी सभ तोरा भयक कारण युद्ध सँ हटल मानथुन्ह।।३५।।

तोहर वैरी सभ तोहर सामर्थ्यक निन्दा करैत तोरा बहुत रास नहिं कहए योग्य वचन सेहो कहथुन्ह, ओहि सँ अधिक दुःख आओर की भए सकैत अछि?।।३६।।

या तऽ तूँ युद्ध मे मारल जा कऽ स्वर्ग कैँ प्राप्त हेबह वा संग्राम मे जीति कए पृथ्वीक राज्य भोगबऽह। एहि कारण हौ अर्जुन! तूँ युद्धक लेल निश्चय कए ठाढ़ भए जाह।।३७।।

जय–पराजय, लाभ–हानि आ सुख–दुःख कैँ समान बुझि, एकर बाद युद्धक लेल तैयार भए जाह, एहि प्रकार युद्ध केला सँ तूँ पाप कैँ नहिं प्राप्त हेबह।।३८।।

हौ पार्थ! ई बुद्धि तोरा लेल ज्ञानयोगक विषय मे कहल गेलह आ आब तूँ एकरा कर्मयोगक विषय मे सुनऽ–जाहि बुद्धि सँ युक्त भेल तूँ कर्मक बन्धन कँ नीकजकाँ त्यागि देबह अर्थात् सर्वथा नष्ट कए देबह।।३९।।

एहि कर्मयोग मे आरम्भक अर्थात् बीजक नाश नहिं होइत अछि आ उनटा फलरूप दोषहुँ नहिं अछि, बल्कि एहि कर्मयोगरूप धर्मक कनियो साधन जन्म–मृत्युरूपी महान भय सँ रक्षा कए दैत अछि।।४०।।

हौ अर्जुन! एहि कर्मयोग मे निश्चयात्मिका बुद्धि एकहिं होइत अछि किन्तु अस्थिर विचारबला विवेकहीन सकाम मनुष्य सभक बुद्धि निश्चये बहुत रास भेदबला आ अनन्त होइत अछि ।।४१।।

हौ अर्जुन! जे भोग सभ मे तन्मय भय रहल छथि, जे कर्मफलक प्रशंसक केवल वेदवाक्य सभ मे मात्र प्रीति रखैत छथि, जिनक बुद्धि मे स्वर्गहिं परम प्राप्य वस्तु छैन्हि–आ जे 'स्वर्ग सँ बढ़ि कए दोसर कोनो वस्तु नहिं अछि'–एहन कहनिहार छथि–ओ अविवेकीजन एहि प्रकारक जाहि पुष्पित अर्थात् दिखाउ शोभायुक्त वाणी कँ कहल करैत छथि जे जन्मरूप कर्मफल देनिहार एवं भोग आ ऐश्वर्यक प्राप्ति लेल नाना प्रकारक बहुत रास क्रिया सभक वर्णन करएबला अछि, ओहि वाणी द्वारा जिनक चित्त चोरा लेल गेल छैन्हि, जे भोग आ ऐश्वर्यक अत्यन्त आसक्त छथि, ओहि पुरुष सभक परमात्मा मे निश्चयात्मिका बुद्धि नहिं होइत छैन्हि।।४२–४३–४४।।

हौ अर्जुन! वेद उपर्युक्त प्रकार सँ तीनू गुणक कार्यरूप समस्त भोग आ हुनक साधन सभक प्रतिपादन करएबला छथि, तैं तूँ ओहि भोग आ हुनक साधन सभ मे आसक्तिहीन, हर्ष–शोकादि द्वन्द्व सँ रहित, नित्यवस्तु परमात्मा मे स्थित योग*(अप्राप्तक प्राप्ति)* क्षेम*(प्राप्त वस्तुक रक्षा)* कँ नहिं चाहएबला आ स्वाधीन अन्तःकरणबला हुअऽ।।४५।।

सब दिश सँ भरल पोखरि कँ भेटि गेला पर डबरा मे मनुष्यक जतेक प्रयोजन रहैत अछि, ब्रह्म कँ तत्त्व सँ जननिहार बाह्मण कँ समस्त वेद मे ओतबहिं प्रयोजन रहि जाइत अछि।।४६।।

तोहर कर्म करएटा मे अधिकार छऽ, ओकर फल मे कथमपि नहिं। तैं तूँ कर्मक फलक हेतु नहिं हुअऽ आ तोहर कर्म नहिं करए मे सेहो आसक्ति नहिं होएबाक चाही।।४७।।

हौ धनंजय! तूँ आसक्ति कँ त्याग कए आ सिद्धि आ असिद्धि मे समान बुद्धिबला भए कऽ योग मे स्थित हुअऽ। कर्तव्यकर्म कँ करए मे समत्व *(जे किछु कर्म कएल जाए ओकर पूरा होमऽ वा नहिं होमऽ मे आओर ओकर फल मे समभाव रहब)* योग कहाइत अछि।।४६।।

एहि समत्वरूप बुद्धियोग सँ सकाम कर्म अत्यन्तहिं निम्न श्रेणीक अछि। तैं हौ अर्जुन! तूँ समत्वबुद्धिये मे रक्षाक उपाय ताकऽ अर्थात् बुद्धियोगकहिं आश्रय ग्रहण करऽ कारण फलक हेतु बनएबला अत्यन्त दीन छथि।।४६।।

समत्वबुद्धियुक्त पुरुष पुण्य आ पाप दूनू कँ एहि लोक मे त्यागि दैत छथि अर्थात् एहि दूनू सँ मुक्त भए जाइत छथि। तैं तूँ समत्वरूप योग मे लागि जाह; ई समत्वरूप योगहिं कर्म मे कुशलता अछि अर्थात् कर्मबन्धन सँ छूटक उपाय अछि।।५०।।

किएक तँ समबुद्धि सँ युक्त ज्ञानीजन कर्म सँ उत्पन्न होमऽबला फल कँ त्यागि कए जन्मरूप बन्धन सँ मुक्त भए निर्विकार परमपद कँ प्राप्त भए जाइत छथि।।५१।।

जाहि काल मे तोहर बुद्धि मोहरूप दलिदलि कैँ नीकजकाँ पार कए जेतह, ओहि समय तूँ सुनल आ सुनए मे आबएबला एहि लोक आ परलोक सम्बन्धी सभ भोग सँ वैराग्य कैँ प्राप्त कए लेबह।।५२।।

भाँति– भाँतिक वचन कैँ सुनला सँ विचलित भेल तोहर बुद्धि जखन परमात्मा मे अचल आ स्थिर भऽ जेतह तखन तूँ योग कैँ प्राप्त हेबह अर्थात् तोरा परमात्मा सँ नित्य संयोग भए जेतह।।५३।।

अर्जुन बजलाह–

यौ केशव! समाधि मे स्थित परमात्मा कैँ प्राप्त भेल स्थिरबुद्धि पुरुषक की लक्षण छैन्हि? ओ स्थिरबुद्धि पुरुष केना बजैत छथि, केना बैसैति छथि आ केना चलैत छथि?।।५४।।

श्रीभगवान बजलाह–

हौ अर्जुन! जाहि काल मे एहेन पुरुष मन मे स्थित सम्पूर्ण कामना कैँ नीकजकाँ त्यागि दैत छथि आ आत्मा सँ आत्महिं मे संतुष्ट रहैत छथि, ओहि काल मे ओ स्थितप्रज्ञ कहल जाइत छथि।।५५।।

दुःखक प्राप्ति भेला पर जिनका मन मे उद्वेग नहिं होइत छैन्हि, सुखक प्राप्ति मे जे सर्वथा निःस्पृह छथि आ जिनकर राग, भय आ क्रोध नष्ट भए गेल छैन्हि, एहन मुनि स्थिरबुद्धि कहल जाइत छथि ।।५६।।

जे पुरुष सर्वत्र स्नेहरहित भेल ओहि–ओहि शुभ या अशुभ वस्तु कैँ प्राप्त कए ने प्रसन्न होइत छथि आ ने द्वेष करैत छथि, हुनकर बुद्धि स्थिर छैन्हि।।५७।।

आओर काउछ सब दिश सँ अपन अंग कैँ जेना समेटि लैत अछि, ओहिना जखन ई पुरुष इन्द्रियक विषय सँ इन्द्रिय कैँ सभ प्रकार सँ हटा लैत छथि, तखन हुनक बुद्धि स्थिर छैन्हि*(एहन बुझक चाही)*।।५८।।

इन्द्रिय सभक द्वारा विषय सभक कैँ नहिं ग्रहण करएबला पुरुष कैँ सेहो केवल विषय तऽ निवृत्त भए जाइत छैन्हि, परन्तु ओहि मे रहएबला आसक्ति निवृत्त नहिं होइत छैन्हि। एहि स्थितप्रज्ञ पुरुषक तऽ आसक्तियो परमात्माक साक्षात्कार कएकऽ निवृत्त भए जाइत छैन्हि।।५९।।

हौ अर्जुन! आसक्तिक नाश नहिं भेलाक कारण ई प्रमथन स्वभावबला इन्द्रिय सभ यत्न करैत बुद्धिमान पुरुष कैँ मनहुँ कैँ बलात्कार सँ हरि लैत अछि।।६०।।

तैँ साधक के चाही जे ओ ओहि सम्पूर्ण इन्द्रिय सभ कैँ वश मे कएकऽ समाहितचित्त भेल हमर परायण भए ध्यान मे बैसए, किएक तऽ जाहि पुरुषक इन्द्रियसभ वश मे होइत छैन्हि, हुनकहिं बुद्धि स्थिर भए जाइत छैन्हि।।६१।।

विषयक चिन्तन करएबला पुरुष के ओहि विषय मे आसक्ति भए जाइत छैन्हि, आसक्ति सँ ओहि विषयसभक कामना उत्पन्न होइत अछि आ कामना मे विघ्न पड़ला सँ क्रोध उत्पन्न होइत अछि।।६२।।

क्रोध सँ अत्यन्त मूढ़भाव उत्पन्न भए जाइत अछि, मूढ़भाव सँ स्मृति मे भ्रम भए जाइत अछि, स्मृति मे भ्रम भेला सँ बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्तिक नाश भए जाइत अछि, आ बुद्धिक नाश भेला सँ पुरुष अपन स्थिति सँ खसि पड़ैत छथि।।६३।।

परन्तु अपन अधीन कएल अन्तःकरणबला साधक अपन वश मे कएल, राग–द्वेष सँ रहित इन्द्रिय सभ द्वारा विषय सभ मे विचरण करैत अन्तःकरणक प्रसन्नता कँ प्राप्त होइत छथि।।६४।।

अन्तःकरणक प्रसन्नता भेला पर हिनकर सम्पूर्ण दुःखक समाप्ति भए जाइत छैन्हि आ ओहि प्रसन्नचित्तबला कर्मयोगीक बुद्धि शीघ्रहिं सब दिश सँ हटि कए एक परमात्मा मे नींकजकाँ स्थिर भए जाइत छैन्हि।।६५।।

नहिं जीतल मन आ इन्द्रिय सभ बला पुरुष मे निश्चयात्मिका बुद्धि नहिं होइत अछि आ ओहि अयुक्त मनुष्य कँ अन्तःकरण मे भावना सेहो नहिं होइत छैन्हि आओर भावनाहीन मनुष्य कँ शान्ति नहिं भेटैत छैन्हि आ शान्तिरहित मनुष्य कँ सुख केना भेटि सकैत छैन्हि?।।६६।।

कियैक तऽ जेना जल मे चलएबला नाव कँ वायु हरण कए लैत अछि, ओहिना विषय मे विचरैत इन्द्रिय सभ मे मन जाहि इन्द्रियक संग रहैत अछि ओ एकहिं इन्द्रिय एहि अयुक्त पुरुषक बुद्धि कँ हरण कए लैत अछि।।६७।।

तैँ हौ महाबाहो! जाहि पुरुषक इन्द्रिय सभ इन्द्रियक विषय सभ सँ सब प्रकार निग्रह कएल छैन्हि, हुनकहिं बुद्धि स्थिर छैन्हि।।६८।।

सम्पूर्ण प्राणीक लेल जे रात्रिक समान छैन्हि, ओहि मे नित्य ज्ञानस्वरूप परमानन्दक प्राप्ति मे स्थितप्रज्ञ योगी जगैत छथि आ जाहि नाशवान सांसारिक सुखक प्राप्ति मे सभ प्राणी जगैत छथि, परमात्माक तत्त्व कँ जननिहार मुनिक लेल ओ रात्रिक समान छैन्हि।।६९।।

जेना अनेक नदी सभक जल सभ दिश सँ परिपूर्ण, अचल समुद्र मे ओकरा विचलित नहिं करैत स्वयं समा जाइत अछि, तहिना सभ भोग जाहि स्थितप्रज्ञ पुरुष मे कोनो प्रकारक विकार उत्पन्न केने बिना समा जाइत अछि, वैह पुरुष परमशान्ति कँ प्राप्त होइत छथि, भोगसभ कँ चाहनिहार नहिं।।७०।।

जे पुरुष सम्पूर्ण कामनासभ कँ त्याग कए ममतारहित, अहंकाररहित आ स्पृहारहित होइत विचरैत छथि, वैह शान्ति कँ प्राप्त होइत छथि।।७१।।

हौ अर्जुन! ई ब्रह्म कँ प्राप्त भेल पुरुषक स्थिति अछि, एकरा प्राप्त भए योगी कहियो मोहित नहिं होइत छथि आ अन्तहु काल मे एहि ब्राह्मी स्थिति मे स्थित भए ब्रह्मानन्द कँ प्राप्त भए जाइत छथि ।।७२।।

एना भगवान द्वारा गायल उपनिषद, ब्रह्मविद्या, योगशास्त्र मे, श्रीकृष्ण आ अर्जुनक बीच भेल संवाद ***सांख्ययोग*** *नामक* ***दोसर अध्याय*** *समाप्त भेल।*

तेसर अध्याय : कर्मयोग

अर्जुन बजलाह़–

यौ जनार्दन! यदि अहाँ कँ कर्मक अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठ मान्य अछि तऽ फेर हे केशव! हमरा भयंकर कर्म मे कियैक लगबैत छी?।।१।।

अहाँ मिलल सन वचन सँ हमर बुद्धि कँ बुझु जे मोहित कए रहल छी। तँ ओहि एक बात कँ निश्चित कए कऽ कही जाहि सँ हम कल्याण कँ प्राप्त भए जाइ।।२।।

श्रीभगवान बजलाह़–

यौ निष्पाप! एहि लोक मे दू प्रकारक निष्ठा *(साधनक परिपक्व अवस्था अर्थात् पराकाष्ठा)* हमरा द्वारा पहिले सँ कहल गेल अछि। ओहि मे सांख्ययोगीक निष्ठा तँ **ज्ञानयोग** *(माया सँ उत्पन्न भेल सम्पूर्ण गुणहिं गुण कँ बरतैत छैथि, एना बुझि आ मन, इन्द्रिय आ शरीर द्वारा होमबला सम्पूर्ण क्रिया मे कर्तापन कँ अभिमान सँ रहित भए सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्मा मे एकीभाव स्थित रहक नाम कर्मयोग अछि, एकरे 'सन्यास', 'सांख्ययोग' आदि नाम सँ कहल गेल अछि)* सँ आ योगीक निष्ठा **कर्मयोग** *(फल आ आसक्ति कँ त्यागि भगवानक आज्ञाक अनुसार केवल भगवानक लेल समत्वबुद्धि सँ कर्म करक नाम 'निष्काम कर्मयोग' अछि, एकरहिं 'समत्वयोग', 'बुद्धि योग', 'कर्मयोग', 'तदर्थकर्म', 'मदर्थकर्म', 'मत्कर्म' आदि नाम सं कहल गेल अछि)* सँ होइत अछि।।३।।

मनुष्य ने तऽ कर्मक आरम्भ केने बिना निष्कर्मता *(जाहि अवस्था कँ प्राप्त पुरुषक कर्म अकर्म भए जाइत अछि अर्थात् फल नहिं उत्पन्न कए सकए)* कँ अर्थात् योगनिष्ठा कँ प्राप्त होइत अछि आ ने कर्मक केवल त्याग मात्रहिं सँ सिद्धि अर्थात् सांख्यनिष्ठा कँ प्राप्त होइत अछि।।४।।

निःसंदेह कोनो मनुष्य कोनोहुँ काल मे क्षणमात्रहुँ बिना कर्म केने नहिं रहैत अछि किएक तऽ सम्पूर्ण मनुष्य समुदाय प्रकृतिजनित गुण द्वारा परवश भेल कर्म करए लेल बाध्य कएल जाइत अछि।।५।।

जे मूढ़बुद्धि मनुष्य समस्त इन्द्रिय कँ उपर सँ रोकि मन सँ ओहि इन्द्रियक विषय कँ चिन्तन करैत अछि, ओ मिथ्याचारी अर्थात् दम्भी कहल जाइत छथि।६।।

किन्तु हौ अर्जुन! जे पुरुष मन सँ इन्द्रिय कँ वश मे कए अनासक्त भेल सभ इन्द्रिय द्वारा कर्मयोगक आचरण करैत छथि, वैह श्रेष्ठ छथि।।७।।

तूँ शास्त्रविहित कर्तव्यकर्म करऽ किएक तऽ कर्म नहिं करक अपेक्षा कर्म केनाइ श्रेष्ठ अछि आ कर्म नहिं केला सँ तोहर शरीर निर्वाह सेहो सिद्ध नहिं हेतह।।८।।

यज्ञक निमित्त कएलजाएबला कर्म सँ अतिरिक्त दोसर कर्म मे लागलहिं ई मनुष्य कर्म सँ बन्हाइत अछि। तँ हौ अर्जुन! तूँ आसक्ति सँ रहित भए ओहि यज्ञक निमित्तहिं नीकजकाँ कर्तव्यकर्म करऽ ।।९।।

प्रजापति ब्रह्मा कल्पक आदि मे यज्ञ सहित प्रजा कँ रचि कए हुनका सँ कहलन्हि जे तौँ सब एहि यज्ञक द्वारा वृद्धि कँ प्राप्त होअऽ आ ई यज्ञ तोरा लोकनि कँ इच्छित भोग प्रदान करएबला होअऽ।।१०।।

तौँ सब एहि यज्ञक द्वारा देवता लोकनि कैँ उन्नत करऽ आ देवता तोरा लोकनि कैँ उन्नत करथि। एहि प्रकार निःस्वार्थ भाव सँ एक–दोसर कैँ उन्नत करैत तौँ सब परमकल्याण कैँ प्राप्त भए जएबह।।११।।

यज्ञक द्वारा बढ़ाओल गेल देवता तोरा लोकनि कैँ बिना मंगनहिं इच्छित भोग निश्चये दैत रहथुन्ह। एहि प्रकार ओहि देवता लोकनि द्वारा देल भोग कैँ जे पुरुष हुनका बिना देने स्वयं भोगैत अछि, ओ चोरहिं अछि।।१२।।

यज्ञ सँ बाँचल अन्न कैँ खाइबला श्रेष्ठ पुरुष सब पाप सँ मुक्त भए जाइत छथि आ जे पापी सभ मात्र अपन शरीर पोषण करए लेल अन्न पकबैत छथि ओ तऽ पापहिं कैँ खाइत छथि।।१३।।

सम्पूर्ण प्राणी अन्नहिं सँ उत्पन्न होइत छथि, अन्नक उत्पत्ति बरखा सँ होइत अछि, बरखा यज्ञ सँ होइत अछि आ यज्ञ विहित कर्म सँ उत्पन्न होमएबला अछि। कर्म समुदाय कैँ तौँ वेद सँ उत्पन्न आ वेद कैँ अविनाशी परमात्मा सँ उत्पन्न भेल जानऽ। एहि सँ सिद्ध होइत अछि जे जे सर्वव्यापी परम अक्षर परमात्मा सदैव यज्ञ मे प्रतिष्ठित छथि।।१४–१५।।

हौ पार्थ! जे पुरुष एहि लोक मे एहि प्रकार परम्परा सँ प्रचलित सृष्टिचक्रक अनुकूल नहिं चलैत छथि अर्थात् अपन कर्तव्यक पालन नहिं करैत छथि, ओ इन्द्रियसभक द्वारा भोग मे रमण करएबला पापायु पुरुष व्यर्थहिं जीबैत छथि।।१६।।

परन्तु जे पुरुष आत्महिं मे रमण करएबला आ आत्महिं मे तृप्त आ आत्महिं मे सन्तुष्ट होथि हुनका लेल कोनो कर्तव्य नहिं छैन्हि।।१७।।

ओहि महापुरुषक एहि विश्व मे ने तऽ कर्म करए सँ कोनो प्रयोजन रहैत छैन्हि आ नहिंए कर्मक नहिं कएलहिं सँ कोनो प्रयोजन रहैत छैन्हि आओर सभ प्राणी मे सेहो हिनकर मिसियो भरि स्वार्थक सम्बन्ध रहैत नहिं छैन्हि ।।१८।।

तैँ हेतु निरन्तर आसक्ति सँ रहित भए सदा कर्तव्यकर्म कैँ नीकजकाँ करैत रहऽ किएक तऽ आसक्ति सँ रहित भए कर्म करैत मनुष्य परमात्मा कैँ प्राप्त भए जाइत अछि।।१६।।

जनकादि ज्ञानीजन सेहो आसक्तिरहित कार्य द्वारा मात्र परमसिद्धि कैँ प्राप्त भेल छलाह। तैँ तथा लोकसंग्रह कैँ देखैत सेहो तूँ कर्महिं करएं लेल योग्य छऽ अर्थात् तोरा कर्म केनाइए उचित छऽ।।२०।।

श्रेष्ठ पुरुष जे–जे आचरण करैत छथि, अन्य पुरुष ओहने–ओहने आचरण करैत छथि। ओ जे किछु प्रमाण कए दैत छथि, समस्त मनुष्य समुदाय ओकरे अनुसार चलए मे लागि जाइत छथि।।२१।।

हौ अर्जुन! हमरा एहि तीन लोक मे ने तऽ किछु कर्तव्य अछि आ नहिंए किछुओ प्राप्त करए योग्य वस्तु अप्राप्त अछि, तैयोऽ हम कर्महिं मे लागल रहैत छी।।२२।।

किएक तऽ हौ पार्थ! यदि कदाचित् हम सावधान भए कर्म मे नहिं लागल रहब तऽ बड्ड हानि भए जाएत; किएक तऽ मनुष्य सब प्रकार सँ हमरहिं मार्गक अनुसरण करैत छथि ।।२३।।

तैँ यदि हम कर्म नहिं करी तऽ ई सब मनुष्य नष्ट–भ्रष्ट भए जाएत आ हम संकरता करएबला भऽ जाएब तथा एहि समस्त प्रजा कैँ नष्ट करएबला बनि जाएब।।२४।।

हौ भारत! कर्म मे आसक्त भेल अज्ञानीजन जाहि प्रकार कर्म करैत छथि, आसक्तिरहित विद्वान सेहो लोकसंग्रह करए लेल चाहैत ओहि प्रकारक कर्म करथि।।२५।।

परमात्माक स्वरूप मे अटल स्थित भेल ज्ञानी पुरुष कैँ चाही जे ओ शास्त्रविहित कर्म मे आसक्तिबला अज्ञानीक बुद्धि मे भ्रम अर्थात् कर्म सभ मे अश्रद्धा उत्पन्न नहिं करथि। किन्तु स्वयं शास्त्रविहित समस्त कर्म नीकजकाँ करैत हुनकहुँ सँ ओहिना करबाबथि।।२६।।

वास्तव मे सम्पूर्ण कर्म सब प्रकार सँ प्रकृतिक गुण सभ द्वारा कएल जाइत अछि, तैयो जिनकर अन्तःकरण अहंकार सँ मोहित भए रहल होए, एहेन अज्ञानी 'हम कर्त्ता छी' एहन मानैत छथि।।२७।।

परन्तु हौ महाबाहो! गुणविभाग आ कर्मविभाग *(त्रिगुणात्मक मायाक कार्यरूप पांच महाभूत आ मन, बुद्धि, अहंकार तथा पांच ज्ञानेन्द्रिय आ शब्दादि पांच विषय एहि सभ समुदायक नाम 'गुणविभाग' आ हिनक परस्पर चेष्टाक नाम 'कर्मविभाग' अछि)* क तत्त्व कैँ *(उपर्युक्त 'गुणविभाग' आ 'कर्मविभाग' सँ आत्मा कैँ पृथक् अर्थात् निर्लेप जननाइए हुनका 'तत्त्व' सँ जननाइ अछि)* जननिहार ज्ञानयोगी सम्पूर्ण गुणहिं गुण मे बरैत रहल अछि, एहन बुझि ओहि मे आसक्त नहिं होइत छथि।।२८।।

प्रकृतिक गुण सँ अत्यन्त मोहित भेल मनुष्य गुण मे आ कर्म मे आसक्त रहैत छथि, ओहि पूर्णतया नहिं बुझएबला मन्दबुद्धि अज्ञानी लोकनि कैँ पूर्णतया जननिहार ज्ञानी विचलित नहिं करथि।।२९।।

हमरा, अन्तर्यामी परमात्मा, मे लागल चित्त द्वारा सम्पूर्ण कर्म कैँ हमरा मे अर्पण कए आशारहित, ममतारहित आ सन्तापरहित भए युद्ध करऽ।।३०।।

जे कोनो मनुष्य दोषदृष्टि सँ रहित आ श्रद्धायुक्त भए हमर एहि मतक सदा अनुसरण करैत छथि, ओहो सम्पूर्ण कर्म सँ छूटि जाइत छथि।।३१।।

परन्तु जे मनुष्य हमरा मे दोषारोपण करैत हमर एहि मतक अनुसार नहिं चलैत छथि, ओहि मूर्ख सभ कैँ तूँ सम्पूर्ण ज्ञान मे मोहित आ नष्ट भेलहिं बुझऽ।।३२।।

सभ प्राणी प्रकृति कैँ प्राप्त होइत छथि अर्थात् अपन स्वभाव कैँ परवश भेल कर्म करैत छथि। ज्ञानवान सेहो अपन प्रकृतिक अनुसार चेष्टा करैत छथि। फेर एहि मे ककरो हठ की करत?।।३३।।

इन्द्रिय–इन्द्रियक अर्थ मे अर्थात् प्रत्येक इन्द्रियक विषय मे राग आ द्वेष नुकाएल स्थित अछि। मनुष्य कैँ ओहि दुनुक वश मे नहिं हेबाक चाही, कारण ओ दुनुहिं एकर कल्याणमार्ग मे विघ्न करएबला महान शत्रु अछि।।३४।।

नीकजकाँ आचरण मे आनल दोसर कैँ धर्म सँ गुणरहित होइतहुँ अपन धर्म अति उत्तम अछि। अपन धर्म मे तऽ मरनाइयो कल्याणकारक अछि आ दोसरक धर्म भय कैँ देनिहार अछि।।३५।।

अर्जुन बजलाह–

यौ कृष्ण! तखन फेर ई मनुष्य स्वयं नहिं चाहितहुँ बलात्कार सँ लगायल जकाँ कथी सँ प्रेरित भए पापक आचरण करैत अछि?।।३६।।

श्रीभगवान बजलाह–

रजोगुण सँ उत्पन्न भेल ई कामहिं क्रोध अछि, ई बहुत खाइबला अर्थात् भोग सभ सँ कहियो नहिं अघाइबला आ बड्ड पापी अछि, एकरहिं तूँ एहि विषय मे बैरी बुझऽ।।३७।।

जाहि प्रकार धुआँ सँ आगि आ मैल सँ दर्पण ढंकल जाइत अछि आ जेना *(मनुष्यक/माल–जालक)* गर्भ पुरैन/जेर सँ झांपल रहैत अछि, ओहिना कामक द्वारा ई ज्ञान झाँपल रहैत अछि।।३८।।

आओर हौ अर्जुन! एहि अग्निक समान कहियो नहिं पूर्ण होमबला कामरूप ज्ञानी सभक नित्य वैरीक द्वारा मनुष्यक ज्ञान झाँपल अछि।।३६।।

सभ इन्द्रिय, मन आ बुद्धि–ई सभ एकर वासस्थान कहल जाइत अछि। ई काम एहि मन, बुद्धि आ इन्द्रियसभहिं कँ द्वारा ज्ञान कँ आच्छादित कए जीवात्मा कँ मोहित करैत अछि।।४०।।

तैँ हौ अर्जुन! तूँ पहिले इन्द्रियसभ कँ वश मे कएकऽ एहि ज्ञान आ विज्ञान कँ नाशकरएबला महान पापी काम कँ अवश्यहिं बलपूर्वक मारि दैह।।४१।।

इन्द्रिय कँ स्थूल शरीर सँ पर अर्थात् श्रेष्ठ, बलबान आ सूक्ष्म कहल जाइत छैक; एहि इन्द्रिय सँ पर मन अछि; मनहुँ सँ पर बुद्धि अछि आ जे बुद्धियो सँ अत्यन्त पर अछि, ओ आत्मा अछि।।४२।।

एहि प्रकार बुद्धि सँ पर अर्थात् सूक्ष्म, बलबान आ अत्यन्त श्रेष्ठ आत्मा कँ जानि कए आ बुद्धिक द्वारा मन कँ वश मे कएकऽ हौ महाबाहो! तूँ एहि कामरूप दुर्जय शत्रु कँ मारि दैह।।४३।।

*एना भगवान द्वारा गायल उपनिषद, ब्रह्मविद्या, योगशास्त्र मे, श्रीकृष्ण आ अर्जुनक बीच भेल संवाद **कर्मयोग** नामक **तेसर अध्याय** समाप्त भेल।*

चारिम अध्याय : ज्ञानकर्मसंन्यासयोग

श्रीभगवान बजलाह–

एहि अविनाशी योग कँ हम सूर्य सँ कहने छलहुँ ; सूर्य अपन पुत्र वैवस्वत मनु सँ कहलन्हि आ मनु अपन पुत्र राजा इक्ष्वाकु कँ कहलन्हि।।१।।

हौ परंतप अर्जुन! एहि प्रकार परम्परा सँ प्राप्त एहि योग कँ राजर्षि सभ जनलन्हि; किन्तु एकर बाद ई योग बहुत काल सँ एहि पृथ्वीलोक मे लुप्तप्राय भए गेल।।२।।

तूँ हमर भक्त आ प्रिय सखा छऽ, तैँ वैह पुरातन योग आइ हम तोरा कहल अछि; कियैक तऽ ई बड्ड उत्तम रहस्य अछि अर्थात् गुप्त राखए योग्य विषय अछि।।३।।

अर्जुन बजलाह–

अहाँक जन्म तँ अर्वाचीन–एखन हाल कँ अछि आ सूर्यक जन्म बहुत पुरान छैन्हि अर्थात् कल्पक आदिए मे भए गेल छलैन्हि। तखन हम एहि बात कँ केना बुझी जे अहीं कल्पक आदि मे सूर्य सँ ई योग कहल।।४।।

श्रीभगवान बजलाह–

हौ परंतप अर्जुन! हमर आ तोहर बहुत रास जन्म भए चुकल अछि। ओहि सभ कँ तूँ नहिं जनैत छऽ, किन्तु हम जनैत छी।।५।।

हम अजन्मा आ अविनाशीस्वरूप होइतहुँ आ समस्त प्राणिक ईश्वर होइतहुँ अपन प्रकृति कैँ अधीन कए अपन योगमाया सँ प्रकट होइत छी।।६।।

हौ भारत! जखन–जखन धर्मक हानि आ अधर्मक वृद्धि होइत अछि, तखनहिं–तखनहिं हम अपन रूप कैँ रचैत छी अर्थात् साकार रूप सँ लोकक सम्मुख प्रकट होइत छी।।७।।

साधु पुरुषक उद्धार करक लेल, पापकर्म करएबला कैँ विनाश करक लेल आ धर्म कैँ नीकजकाँ स्थापना करक लेल हम युग–युग मे प्रकट होइत छी।।८।।

हौ अर्जुन! हमर जन्म आ कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल आ अलौकिक अछि–एहि प्रकार जे मनुष्य तत्त्व *(सर्वशक्तिमान सच्चिदानन्दघन परमात्मा अज, अविनाशी आ परम आश्रय छथि, ओ केवल धर्मक स्थापना करए आ संसारक उद्धार करए लेलहिं अपन योगमाया सँ सगुणरूप भए प्रकट होइत छथि, तैँ परमेश्वरक समान सुहृद, प्रेमी आ पतितपावन दोसर कियो नहिं छथि, एहन बुझि जे पुरुष परमेश्वरक अनन्य प्रेम सँ निरन्तर चिन्तन करैत आसक्तिरहित संसार मे बरतैत छथि, वैह हुनका तत्त्व सँ जनैत छथि)* सँ जानि लैत छथि, ओ शरीर कैँ त्याग कए फेर जन्म कैँ प्राप्त नहिं होइत छथि, किन्तु हमरहिं प्राप्त होइत छथि।।६।।

पहिनहुँ जिनक राग, भय आ क्रोध सर्वथा नष्ट भए गेल छलन्हि आ जे हमरा मे अनन्यप्रेमपूर्वक स्थिर रहैत छलथि, एहन हमर आश्रित रहएबला बहुत रास भक्त उपर्युक्त ज्ञानरूप तप सँ पवित्र भए हमर स्वरूप कैँ प्राप्त भए चुकल छथि।।१०।।

हौ अर्जुन! जे भक्त हमरा जाहि प्रकारे भजैत छथि, हमहूँ हुनका ओही प्रकारे भजैत छी; कियैक तँ सभ मनुष्य सभ प्रकार सँ हमरहिं मार्ग कैँ अनुसरण करैत छथि।।११।।

एहि मनुष्यलोक मे कर्मक फल कैँ चाहएबला लोक देवताक पूजन कएल करैत छथि, कियैक तँ हुनका कर्म सँ उत्पन्न होइबला सिद्धि शीघ्र भेटि जाइत छैन्हि।।१२।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आ शूद्र–एहि चारि वर्णक समूह, गुण आ कर्मक विभागपूर्वक हमरा द्वारा रचल गेल अछि। एहि प्रकार ओहि सृष्टि–रचनादि कर्मक कर्ता भेलहुँ पर हमरा–अविनाशी परमेश्वर कैँ–तूँ वास्तव मे अकर्ता सैह बुझऽ।।१३।।

कर्मक फल मे हमर स्पृहा नहिं अछि, तैँ हमरा कर्म लिप्त नहिं करैत अछि–एहि प्रकार जे हमरा तत्व सँ जानि लैत अछि, ओहो कर्म सँ नहिं बन्हाइत अछि।।१४।।

पूर्वकाल मे मुमुक्षुगण सेहो एहि प्रकार जानि कए कर्म केलन्हि। तैँ तोहूँ पूर्वज द्वारा सदा सँ कएल कर्महिं कैँ करऽ।।१५।।

कर्म की अछि? आ अकर्म की अछि?–एहि प्रकार एकर निर्णय करए मे बुद्धिमान पुरुषहुं मोहित भए जाइत छथि। तैँ ओ कर्मतत्त्व हम तोरा नीकजकाँ बुझाकए कहबह, जकरा जानि कए तूँ अशुभ सँ अर्थात् कर्मबन्धन सँ मुक्त भए जेबह।।१६।।

कर्मक स्वरूप सेहो जानक चाही आ अकर्मक स्वरूप सेहो जानक चाही आओर विकर्मक स्वरूप सेहो जानक चाही; कियैक तऽ कर्मक गति गहन अछि।।१७।।

जे मनुष्य कर्म मे अकर्म कैँ देखैत छथि आ जे अकर्म मे कर्म कैँ देखैत छथि, ओ मनुष्य सभ मे बुद्धिमान छथि आ ओ योगीक समस्त कर्म कैँ करएबला छथि।।१८।।

जिनक सम्पूर्ण शास्त्रसम्मत कर्म बिना कामना आ संकल्पक होइत छैन्हि आओर जिनक समस्त कर्म ज्ञानरूप अग्नि कँ द्वारा भस्म भए गेल छैन्हि, ओहि महापुरुष कँ ज्ञानीजन सेहो पण्डित कहैत छथि।।१६।।

जे पुरुष समस्त कर्म मे आ तकर फल मे आसक्तिक सर्वथा त्याग कए संसारक आश्रय सँ रहित भए गेल छथि, ओ कर्म मे नीकजकाँ बरतैत रहितहुँ वास्तव मे किछुओ नहिं करैत छथि।।२०।।

जिनक अन्तःकरण आ इन्द्रिय सभक सहित शरीर जीतल छैन्हि आ जे समस्त भोगक सामग्रीक परित्याग कए देलन्हिं अछि, एहन आशारहित पुरुष केवल शरीर सम्बन्धी कर्म करितहँ पाप कँ नहिं प्राप्त होइत छथि।।२१।।

जे बिना इच्छाक अपने–आप प्राप्त भेल पदार्थ मे सदा सन्तुष्ट रहैत छथि, जिनका मे ईर्ष्याक सर्वथा अभाव भए गेल छैन्हि, जे हर्ष–शोक आदि द्वन्द्व सँ सर्वथा अतीत भए गेल छथि–एहन सिद्धि आ असिद्धि मे सम रहएबला कर्मयोगी कर्म करितहुँ ओहि सँ नहिं बन्हैत छथि।।२२।।

जिनक आसक्ति सर्वथा नष्ट भए गेल छैन्हि, जे देहाभिमान आ ममता सँ रहित भए गेल छथि, जिनक चित्त निरन्तर परमात्माक ज्ञान मे स्थित रहैत छैन्हि–एहन केवल यज्ञसम्पादनक लेल कर्म करएबला मनुष्यक सम्पूर्ण कर्म नीकजकाँ विलीन भए जाइत छैन्हि ।।२३।।

जाहि यज्ञ मे अर्पण अर्थात् स्रुवा आदि सेहो ब्रह्म अछि आ हवन कएल जाइबला द्रव्य सेहो ब्रह्म अछि आ ब्रह्मरूप कर्ताक द्वारा ब्रह्मरूप अग्नि मे आहुति देबाक रूप क्रिया सेहो ब्रह्म अछि–ओहि ब्रह्मकर्म मे स्थित रहएबला योगी द्वारा प्राप्त करए योग्य फल सेहो ब्रह्महिं अछि।।२४।।

दोसर योगीजन देवता सभक पूजनरूप यज्ञेक नीकजकाँ अनुष्ठान कएल करैत छथि आ अन्य योगीजन परब्रह्म परमात्मारूप अग्नि मे अभेददर्शनरूप यज्ञेक द्वारा आत्मारूप यज्ञक हवन कएल करैत छथि *(परब्रह्म परमात्मा मे ज्ञान द्वारा एकीभाव सँ स्थित भेनाइए ब्रह्मरूप अग्नि मे यज्ञक द्वारा यज्ञ कँ हवन केनाइ अछि)* ।।२५।।

अन्य योगीजन श्रोत आदि समस्त इन्द्रिय कँ संयमरूप अग्नि मे हवन कएल करैत छथि आ दोसर योगीसभ शब्दादि समस्त विषय कँ इन्द्रियरूप अग्नि मे हवन कएल करैत छथि।।२६।।

दोसर योगीजन इन्द्रियसभक सम्पूर्ण क्रिया कँ आओर प्राणसभक समस्त क्रिया कँ ज्ञान सँ प्रकाशित आत्मसंयमयोगरूप अग्नि मे हवन क्रिया करैत छथि। *(सच्चिदानन्दघन परमात्माक सिवाए अन्य किनकहुँ नहिं चिन्तन केनाइए ओहि सभक हवन केनाइ छैक)*।।२७।।

किछु पुरुष द्रव्यसम्बन्धी यज्ञ करएबला छथि, कतेकहुँ तपस्यारूप यज्ञ करएबला छथि आओर दोसर कतेकहुँ योगरूप यज्ञ करएबला छथि, कतेकहुँ अहिंसादि तीक्ष्णव्रत सभ सँ युक्त यत्नशील पुरुष स्वाध्यायरूप ज्ञानयज्ञ करएबला छथि।।२८।।

दोसर कतेकहुँ योगीजन प्राणवायु मे अपानवायुक हवन करैत छथि, ओहिना अन्य योगीजन अपानवायुमे प्राणवायुक हवन करैत छथि आ अन्य कतेकहुँ नियमित आहार करएबला *(अध्याय ६: श्लोक १७ देखू)* प्राणायामपरायण पुरुष प्राण आ अपानक गति कँ रोकि कए प्राण कँ प्राणहिं मे हवन कएल करैत छथि। ई सभ साधक यज्ञ द्वारा पाप कँ नाश कए देइबला आ यज्ञ सभक जानकार छथि ।।२६–३०।।

हौ कुरूश्रेष्ठ अर्जुन! यज्ञ सँ बाँचल अमृतक अनुभव करएबला योगीजन सनातन परब्रह्म परमात्मा कैँ प्राप्त होइत छथि आ यज्ञ नहिं करएबला पुरुषक लेल तऽ ई मनुष्यलोकहुँ सुखदायक नहिं अछि, फेर परलोक केना सुखदायक भए सकैत अछि?।।३१।।

एहि प्रकार आओरो बहुत तरह कैँ यज्ञ वेदक वाणी मे विस्तार सँ कहल गेल अछि। ओहि सभ कैँ तऽ मन, इन्द्रिय आ शरीरक क्रिया द्वारा सम्पन्न हुअबला जानऽ, एहि प्रकार तत्त्व सँ जानि कए हुनक अनुष्ठान द्वारा तूँ कर्मबन्धन सँ सर्वथा मुक्त भए जेबह।।३२।।

हौ परंतप अर्जुन! द्रव्यमय यज्ञक अपेक्षा ज्ञानयज्ञ अत्यन्त श्रेष्ठ अछि आओर यावन्मात्र सम्पूर्ण कर्म ज्ञान मे समाप्त भए जाइत अछि।।३३।।

ओहि ज्ञान कैँ तऽ तत्त्वदर्शी ज्ञानीजनक लग जाकए बुझि, हुनका नीकजकाँ दण्डवत् प्रणाम कएला सँ, हुनक सेवा कएला सँ आ कपट छोड़िकए सरलतापूर्वक प्रश्न केला सँ ओ परमात्मतत्त्व कैँ नीकजकाँ जननिहार ज्ञानी महात्मा तोरा ओहि तत्त्वज्ञानक उपदेश करथुन्ह।।३४।।

जकरा जानिकए तूँ एहि प्रकारक मोह कैँ नहिं प्राप्त हेबह आओर हौ अर्जुन! जाहि ज्ञान द्वारा तूँ सम्पूर्ण भूतसभ कैँ निःशेषभाव सँ पहिने अपना मे *(अध्याय ६ः श्लोक २६ देखू)* आओर पांछाँ हमरा– सच्चिदानन्दघन परमात्मा–मे देखबह *(अध्याय ६ः श्लोक ३० देखू)*।।३५।।

यदि तूँ अन्य पापी सभ सँ सेहो अधिक पाप करएबला हुअऽ, तैयो तूँ ज्ञानरूप नाव द्वारा निःसंदेह सम्पूर्ण पाप–समुद्र कैँ नीकजकाँ हेलि जेबह।।३६।।

कियैक तऽ हौ अर्जुन! जेना प्रज्जवलित अग्नि लकड़ी कैँ भस्ममय कए दैत अछि, तहिना ज्ञानरूप अग्नि सम्पूर्ण कर्म कैँ भस्ममय कए दैत अछि।।३७।।

एहि संसार मे ज्ञानक समान पवित्र करएबला निःसंदेह किछुओ नहिं अछि। ओहि ज्ञान कैँ कतेको समय सँ कर्मयोगक द्वारा शुद्ध अन्तःकरणबला मनुष्य स्वयं अपनहिं आत्मा मे प्राप्त कए लैत अछि।।३८।।

जितेन्द्रिय, साधनपरायण आ श्रद्धावान मनुष्य ज्ञान कैँ प्राप्त होइत अछि आओर ज्ञान कैँ प्राप्त भए ओ बिना देरी कैँ–तत्कालहिं भगवान कैँ प्राप्ति करक समान परमशान्ति कैँ प्राप्त भए जाइत अछि।।३९।।

विवेकहीन आ श्रद्धारहित संशययुक्त मनुष्य परमार्थ सँ अवश्य भ्रष्ट भए जाइत अछि। एहन संशययुक्त मनुष्यक लेल ने तऽ ई लोक अछि, नहिंए परलोक अछि आ नहिंए सुख अछि।।४०।।

हौ धनंजय! जे कर्मयोगक विधि सँ समस्त कर्म कैँ परमात्मा मे अर्पण कए देलन्हि अछि आ जे विवेक द्वारा समस्त संशयक नाश कए देलन्हि अछि, एहन वश मे कएल अन्तःकरणबला पुरुष कैँ कर्म नहिं बन्हैत छैन्हि ।।४१।।

तैँ हौ भरतवंशी अर्जुन! तूँ हृदय मे स्थित एहि अज्ञानजनित अपन संशय कैँ विवेकज्ञानरूप तरुआरि द्वारा छेदन कए समन्वयरूप कर्मयोग मे स्थित भए जाह आ युद्ध लेल ठाढ़ भए जाहऽ।।४२।।

एना भगवान द्वारा गायल उपनिषद, ब्रह्मविद्या, योगशास्त्र मे, श्रीकृष्ण आ अर्जुनक बीच भेल संवाद ***ज्ञानकर्मसंन्यासयोग*** *नामक* ***चारिम अध्याय*** *समाप्त भेल।*

पाँचम अध्याय : कर्मसंन्यासयोग

अर्जुन बजलाह़—

यौ कृष्ण! अहाँ कर्मक संन्यास आ फेर कर्मयोगक प्रशंसा करैत छी। तैँ एहि दूनू मे सँ जे एक हमरा लेल नीक—निकुत, निश्चत कल्याणकारक साधन होमए, ओकरा कहू।।१।।

श्रीभगवान बजलाह़—

कर्मसंन्यास आ कर्मयोग—ई दूनूहिं परम कल्याण करएबला अछि; किन्तु ओहि दूनू मे संन्यास सँ कर्मयोग साधन मे सुगम भेला सँ श्रेष्ठ अछि।।२।।

हौ अर्जुन! जे पुरुष ने ककरो सँ द्वेष करैत छथि आ नहिंए कोनो वस्तुक आकांक्षा करैत छथि, ओ कर्मयोगी सदैव संन्यासिए बुझक योग्य छथि; कियैक तऽ राग—द्वेष आदि द्वन्द्व सँ रहित पुरुष सुखपूर्वक संसारबन्धन सँ मुक्त भए जाइत छथि ।।३।।

उपर्युक्त संन्यास आ कर्मयोग कँ मूर्ख सभ अलग—अलग फल देइबला कहैत छथि ने कि पंडितजन, कियैक तऽ दूनू मे एकहुँ मे सम्यक प्रकार सँ स्थित पुरुष दूनू कँ फलरूप परमात्मा कँ प्राप्त होइत छथि।।४।।

ज्ञानयोगीजन द्वारा जे परमधाम प्राप्त कएल जाइत अछि, कर्मयोगीजन द्वारा सेहो वैह प्राप्त कएल जाइत अछि, तैँ जे पुरुष ज्ञानयोग आ कर्मयोग कँ फलरूप मे एक देखैत छथि, वैह यथार्थ देखैत छथि।।५।।

परन्तु हौ अर्जुन! कर्मयोगक बिना होमऽबला अर्थात् मन, इन्द्रिय आ शरीर द्वारा होमऽबला सम्पूर्ण कर्म मे कर्तापनक त्याग प्राप्त भेनाइ कठिन अछि आ भगवानक स्वरूप कँ मनन करएबला कर्मयोगी परब्रह्म परमात्मा कँ शीघ्रहिं प्राप्त भए जाइत छथि।।६।।

जिनक मन वश मे छैन्हि, जे जितेन्द्रिय एवं विशुद्ध अन्तःकरणबला छथि आ सम्पूर्ण प्राणिजनक आत्मरूप परमात्मा मात्र जिनक आत्मा छैन्हि, एहन कर्मयोगी कर्म करितहुँ लिप्त नहिं होइत छथि।।७।।

तत्त्व कँ जानएबला सांख्ययोगी तँ देखैत, सुनैत, स्पर्श करैत, सूंघैत, भोजन करैत, चलैत, सुतैत, सांस लैत, बजैत, त्यागैत, ग्रहण करैत आ आँखि कँ खोलैत, मिझरैत सेहो, सभ इन्द्रिय अपन—अपन अर्थ मे बरैत रहल अछि—एहि प्रकार बुझि निःसंदेह एना मानथि कि हम किछुओ नहिं करैत छी।।८—९।।

जे पुरुष सभ कर्म कँ परमात्मामे अर्पण कए आ आसक्ति कँ त्याग कए कर्म करैत छथि, ओ पुरुष पानि सँ कमलक पात जकाँ पाप सँ लिप्त नहिं होइत छथि।।।१०।।

कर्मयोगी ममत्वबुद्धिरहित केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि आ शरीर द्वारा सेहो आसक्ति कँ त्याग कए अन्तःकरणक शुद्धिक लेल कर्म करैत छथि।।११।।

कर्मयोगी कर्मक फल कँ त्याग कए भगवानक प्राप्तिरूप शान्ति कँ प्राप्त होइत छथि आ सकाम पुरूष कामनाक प्रेरणा सँ फल मे आसक्त भए बन्हाइत छथि।।१२।।

अन्तःकरण जिनक वश मे छैन्हि, एहन सांख्ययोगक आचरण करएबला पुरुष नहिं करैत आ नहिं करबबैतहुँ, नौ द्वारबला शरीररूप घर मे सभ कर्म कैं मन सँ त्याग कए आनन्दपूर्वक सच्चिदानन्दघन परमात्मा कैं स्वरूप मे स्थित रहैत छथि।१३।।

परमेश्वर मनुष्यक ने तऽ कर्तापनक; ने कर्मसभक आ नहिंए कर्मफलक संयोगहुँ कें रचना करैत छथि; किन्तु स्वभावहिं बरैत रहल छथि।।१४।।

सर्वव्यापी परमेश्वर सेहो ने किनकहुँ पापकर्म कैं आ ने किनकहुँ शुभकर्महिं कैं ग्रहण करैत छथि; किन्तु अज्ञान कैं द्वारा ज्ञान झाँपल रहैत अछि, ओहिं सँ सभ अज्ञानी मनुष्य मोहित भए रहल छथि।।१५।।

परन्तु जिनक ओ अज्ञान परमात्माक तत्त्वज्ञान द्वारा नष्ट कए देल गेल अछि, हुनक ओ ज्ञान सूर्यक समान ओहि सच्चिदानन्दघन परमात्मा कैं प्रकाशित कए दैत अछि।।१६।।

जिनक मन हुनका सन भए रहल छैन्हि, जिनक बुद्धि हुनका सन भए रहल छैन्हि आ सच्चिदानन्दघन परमात्मा टा मे जिनक एकीभाव सँ स्थिति अछि, एहन तत्परायण पुरुष ज्ञानक द्वारा पापरहित भए अपुनरावृत्ति कैं अर्थात परमगति कैं प्राप्त होइत छथि।।१७।।

ओ ज्ञानीजन विद्या आ विनययुक्त ब्राह्मण मे आओर गौ, हाथी, कूकूर आ चाण्डालहुँ मे समदर्शीएऽ *(अध्याय ६: श्लोक ३२ क टिप्पणी देखू)* होइत छथि।।१८।।

जिनक मन समभाव मे स्थित छैन्हि, हुनका द्वारा एहि जीवित अवस्थाए मे सम्पूर्ण संसार जीति लेल गेल अछि, कियैक तऽ सच्चिदानन्दघन परमात्मा निर्दोष आ सम छथि, एहि सँ ओ सच्चिदानन्दघन परमात्मा टा मे स्थित छथि।।१९।।

जे पुरुष प्रिय कैं प्राप्त भए हर्षित नहिं होइत छथि आ अप्रिय कैं प्राप्त भए उद्विग्न नहिं होइत छथि, ओ स्थिरबुद्धि, संशयरहित, ब्रह्मवेत्ता पुरुष सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा मे एकीभाव सँ नित्य स्थित छथि।।२०।।

बाहरक विषय मे आसक्तिरहित अन्तःकरणबला साधक आत्मा मे स्थित जे ध्यानजनित सात्विक आनन्द अछि, ओकरा प्राप्त होइत छथि; तकर बाद ओ सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माक ध्यानरूप योग मे अभिन्न भाव सँ स्थित पुरुष अक्षय आनन्दक अनुभव करैत छथि।।२१।।

जे ई सभ इन्द्रिय आ विषय सभक संयोग सँ उत्पन्न होमऽबला भोग सभ छैक, यद्यपि विषयी पुरुष सभ कैं सुखरूप लगैत छैन्हि, तैयो दुःखहिं कैं ई कारण छैक आ आदि–अन्तबला अर्थात् अनित्य छैक। तैं हौ अर्जुन! बुद्धिमान विवेकी पुरूष ओहि मे नहिं रमैत छथि।।२२।।

जे साधक एहि मनुष्य शरीर मे शरीरक नाश होमऽ सँ पहिनहि काम–क्रोध सँ उत्पन्न होमऽबला वेग कैं सहन करए मे समर्थ भए जाइत छथि, वैह पुरूष योगी छथि आ वैह सुखी छथि।।२३।।

जे पुरुष अन्तरात्माए मे सुखबला छथि, आत्माए मे रमण करएबला छथि, आ जे आत्माए मे ज्ञानबला छथि, ओ सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माक संग एकीभाव कैं प्राप्त सांख्ययोगी शान्तब्रह्म कैं प्राप्त होइत छथि।।२४।।

जिनक सभ पाप नष्ट भए गेल छैन्हि, जिनक सभ संशय ज्ञानक द्वारा निवृत्त भए गेल छैन्हि, जे सम्पूर्ण प्राणी सभक हित मे रत छथि आ जिनक जीतल मन निश्चलभाव सँ परमात्मा मे स्थित छैन्हि, ओ ब्रह्मवेत्ता पुरुष शान्तब्रह्म कैं प्राप्त होइत छथि।।२५।।

काम—क्रोध सँ रहित, जीतल चित्तबला, परब्रह्म परमात्माक साक्षात्कार कएल ज्ञानी पुरुष सभक लेल सभ दिश सँ शान्त परब्रह्म परमात्मा मात्र परिपूर्ण छथि।।२६।।

बाहरक विषय—भोगक नहिं चिन्तन करैत बाहरहिं निकालि आ दूनू आँखिक दृष्टि कँ भृकुटीक बीच स्थित कएकँ आओर नासिका मे विचरएबला प्राण आ अपानवायु कँ सम कए, जिनक सभ इन्द्रिय, मन आ बुद्धि जीतल छैन्हि, एहन जे मोक्षपरायण मुनि *(परमेश्वरक स्वरूप कँ निरन्तर मनन करएबला)* इच्छा, भय आ क्रोध सँ रहित भए गेल छथि, ओ सदा मुक्तहिं छथि।।२७—२८।।

हमर भक्त हमरा सभ यज्ञ आ तप कँ भोगएबला, सम्पूर्ण लोकक ईश्वरहुँ कँ ईश्वर आओर सम्पूर्ण भूत—प्राणीक सुहृद अर्थात् स्वार्थरहित, दयालु आ प्रेमी, एहन तत्त्व सँ जानि कए शान्ति कँ प्राप्त होइत छथि।।२९।।

*एना भगवान द्वारा गायल उपनिषद, ब्रह्मविद्या, योगशास्त्र मे, श्रीकृष्ण आ अर्जुनक बीच भेल संवाद **कर्मसंन्यासयोग** नामक **पाँचम अध्याय** समाप्त भेल।*

छठम अध्याय : आत्मसंयमयोग

श्रीभगवान बजलाह—

जे पुरुष कर्मफलक आश्रय नहिं लएकऽ करए योग्य कर्म करैत छथि, ओ संन्यासी आ योगी छथि आ केवल अग्निक त्याग करएबला योगी नहिं छथि।।१।।

हौ अर्जुन! जकरा संन्यास *(अध्याय ३ क श्लोक ३ क टिप्पणी मे एकर फरिछा कए अर्थ देल गेल अछि)* एहेन कहल जाइत अछि, ओकरे तूँ योग बुझह; कियैक तऽ संकल्प सभक त्याग नहिं करएबला कोनहुँ पुरुष योगी नहिं होइत अछि।।२।।

योग मे आरूढ़ हेबाक इच्छाबला मननशील पुरुषक लेल योगक प्राप्ति मे निष्कामभाव सँ कर्म करनाइए हेतु कहल जाइत अछि आ योगारूढ़ भऽ गेला पर ओहि योगारूढ़ पुरुषक जे सभ संकल्पक अभाव अछि, वैह कल्याणक हेतु कहल जाइत अछि।।३।।

जाहि काल मे ने तऽ इन्द्रियसभक भोग मे आ ने कर्म सभहिं मे आसक्त होइत छथि, ओहि काल मे सभ संकल्प कँ त्याग केनिहार पुरुष योगारूढ़ कहल जाइत छथि।।४।।

अपनहिं द्वारा अपन संसार—समुद्र सँ उद्धार करी आ अपना कँ अधोगति मे नहिं पहुँचाबी, कारण कि यैह मनुष्य स्वयं तऽ अपन मित्र अछि आ स्वयंमेव अपन शत्रु अछि।।५।।

जाहि जीवात्मा द्वारा मन आ सभ इन्द्रिय सहित शरीर जीतल अछि, ओहि जीवात्मा कँ तऽ ओ स्वयंमेव मित्र अछि आ जिनका द्वारा मन आ इन्द्रिय सहित शरीर नहिं जीतल गेल अछि, हुनका लेल ओ स्वयंमेव शत्रु जकाँ शत्रुता मे बरतैत अछि।।६।।

जाड़—गर्मी आ सुख—दुःख आदि मे आओर मान—अपमान मे जिनक अन्तःकरणक वृत्ति नीकजकाँ शान्त छैन्हि, एहन स्वाधीन आत्माबला पुरुष कँ ज्ञान मे सच्चिदानन्दघन परमात्मा सम्यक प्रकार सँ स्थित छथि अर्थात् हुनक ज्ञान मे परमात्माक अलावे अन्य किछु छैन्हिए नहिं।।७।।

जिनक अन्तःकरण ज्ञान–विज्ञान सँ तृप्त छैन्हि, जिनक स्थिति विकाररहित छैन्हि, जिनक इन्द्रिय नीकजकाँ जीतल छैन्हि आ जिनका लेल माटि, पाथर आ सोन समान छैन्हि, ओ योगी मुक्त अर्थात् भगवान कैँ प्राप्त छथि, एहन कहल जाइत अछि।।८।।

सुहृद् *(स्वार्थरहित, सभक हित करएबला),* मित्र, वैरी, उदासीन *(पक्षपातरहित)*, मध्यस्थ *(दुनु दिशक नींक चाहएबला),* द्वेष्य आ बन्धुगण मे, धर्मात्मा सभ मे आ पापी सभ मे सेहो समानभाव रखएबला अत्यन्त श्रेष्ठ छथि।।६।।

मन आ सभ इन्द्रिय सहित शरीर कैँ वश मे रखनिहार, आशारहित आ संग्रहरहित योगी असगरे एकान्त स्थान मे स्थित भए आत्मा कैँ निरन्तर परमात्मा मे लगाबथि।।१०।।

शुद्ध भूमि मे, जकर उपर क्रमशः कुश, मृगछाल आ वस्त्र बिछाओल अछि, जे ने बहुत ऊँच अछि आ ने बहुत नींच अछि, एहेन अपन आसन कैँ स्थिर स्थापना कएकऽ, ओहि आसन पर बैसि कए चित्त आ सभ इन्द्रियक क्रिया सभ कैँ वश मे रखैत मन कैँ एकाग्र कएकऽ अन्तःकरणक शुद्धिक लेल योगक अभ्यास करथि।।११–१२।।

काया, माथ आ गला कैँ समान आओर अचल धारण कए आ स्थिर भए, अपन नाकक अग्रभाग पर दृष्टि जमा कए, अन्य दिशाक दिश नहिं देखैत ब्रह्मचारीक व्रत मे स्थित, भयरहित आ नीकजकाँ शान्त अन्तःकरणबला सावधान योगी मन कैँ रोकि कए हमरा मे चित्तबला आ हमर परायण भएकऽ स्थित होमए।।१३–१४।।

मन कैँ वश मे कएल योगी एहि प्रकार आत्मा कैँ निरन्तर हमर– परमेश्वरक स्वरूप मे लगबैत हमरा मे रहएबला परमानन्दक पराकाष्ठारूप शान्ति कैँ प्राप्त होइत छथि।।१५।।

हौ अर्जुन! ई योग ने तऽ बहुत खाइबला कैँ, आ ने एकदम नहिं खाइबला कैँ, ने बहुत सुतबाक स्वभावबला कैँ आ ने सदिखन जगनिहार कैँ सिद्ध होइत छैन्हि।।१६।।

दुःखक नाशकरएबला योग तऽ यथायोग्य चेष्टा करएबला कैँ आ यथायोग्य सूतए आ जागएबला कैँ मात्र सिद्ध होइत छैन्हि।।१७।।

अत्यन्त वश मे कएल चित्त जाहि काल मे केवल परमात्मा मे नीकजकाँ स्थित भए जाइत अछि, ओहि काल मे सम्पूर्ण भोग सँ स्पृहारहित पुरुष योगयुक्त छथि, एहन कहल जाइत अछि।।१८।।

जाहि प्रकार वायुरहित स्थान मे स्थित दीप चलायमान नहिं होइत अछि, ओहने उपमा परमात्मा कैँ ध्यान मे लागल योगी कैँ जीतल चित्त कैँ कहल गेल अछि।।१६।।

योगक अभ्यास सँ निरुद्ध चित्त जाहि अवस्था मे उपराम भए जाइत अछि आ जाहि अवस्था मे परमात्माक ध्यान सँ शुद्ध भेल सूक्ष्म बुद्धि द्वारा परमात्मा कैँ साक्षात् करैत सच्चिदानन्दघन परमात्माटा मे सन्तुष्ट रहैत अछि।।२०।।

इन्द्रिय सभ सँ अतीत, केवल शुद्ध भेल सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ग्रहण करबाक योग्य जे अत्यन्त आनन्द अछि; ओकरा जाहि अवस्था मे अनुभव करैत छथि आ जाहि अवस्था मे स्थित ई योगी परमात्माक स्वरूप सँ विचलित नहिं होइत छथि।।२१।।

परमात्माक प्राप्तिरूप जाहि लाभ कैँ प्राप्त भएकँ ओहि सँ अधिक दोसर किछुओ के लाभ नहिं मानैत छथि आ परमात्माक प्राप्तिरूप जाहि अवस्था मे स्थित योगी बड्ड पैघ दुःख सँ सेहो चलायमान नहिं होइत छथि।।२२।।

जे दुःखरूप संसारक संयोग सँ रहित अछि आ जकर नाम योग अछि, ओकरा जानक चाही। ओ योग नहिं हड़बड़ाएल अर्थात् धैर्य आ उत्साहयुक्त चित्त सँ निश्चयपूर्वक केनाइ कर्त्तव्य अछि।।२३।।

संकल्प सँ उत्पन्न होइबला सम्पूर्ण कामना कैँ निःशेषरूप सँ त्यागि कए आ मन कैँ द्वारा इन्द्रियक समुदाय कैँ सभ दिश सँ नीकजकाँ रोकि कए क्रम–क्रम सँ अभ्यास करैत उपरति कैँ प्राप्त होथि आ धैर्ययुक्त बुद्धि द्वारा मन कैँ परमात्मा मे स्थित कएकऽ परमात्माक अलावे आओर किछुओ चिन्तन नहिं करथि।।२४–२५।।

ई स्थिर नहिं रहएबला आ चंचल मन जाहि–जाहि शब्दादि विषयक निमित्त संसार मे विचरैत अछि, ओहि–ओहि विषय सँ रोकि कए अर्थात् हटा कए एकरा बेर–बेर परमात्माटा मे निरुद्ध करथि ।।२६।।

कियैक तऽ जिनक मन नीकजकाँ शान्त छैन्हि, जे पाप सँ रहित छथि आ जिनक रजोगुण शान्त भए गेल छैन्हि, एहन एहि सच्चिदानन्दघन ब्रह्मक संग एकीभाव भेल योगी कैँ उत्तम आनन्द प्राप्त होइत छैन्हि।।२७।।

ओ पापरहित योगी एहि प्रकार निरन्तर आत्मा कैँ परमात्मा मे लगबैत सुखपूर्वक परब्रह्म परमात्मा कैँ प्राप्तिरूप अनन्त आनन्दक अनुभव करैत छथि।।२८।।

सर्वव्यापी अनन्त चेतन मे एकीभाव सँ स्थितिरूप योग सँ युक्त आत्माबला आओर सभ मे समभाव सँ देखएबला योगी आत्मा कैँ सम्पूर्ण भूत मे स्थित आ सम्पूर्ण भूत कैँ आत्मा मे स्थित देखैत छथि।।२९।।

जे मनुष्य सम्पूर्ण भूत मे सभ कैँ आत्मरूप हमरा–वासुदेवहिं कैँ व्यापक देखैत छथि आ सम्पूर्ण भूत कैँ हमरा–वासुदेवहिं कैँ भीतर *(अध्याय ६ः श्लोक ६ देखू)* देखैत छथि, हुनका लेल हम अदृश्य नहिं होइत छी आ ओ हमरा लेल अदृश्य नहिं होइत छथि।।३०।।

जे पुरुष एकीभाव मे स्थित भए कऽ सम्पूर्ण भूत मे आत्मरूप सँ स्थित हमरा–सच्चिदानन्दघन वासुदेव कैँ भजैत छथि, ओ योगी सभ प्रकार सँ बरतैतहुँ हमरहिं मे बरतैत छथि।।३१।।

हौ अर्जुन! जे योगी अपना समान सभ भूत मे सम देखैत छथि *(जेना मनुष्य अपन माथ, हाथ, पैर आ गुदादि क सँग ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र आ म्लेच्छादिक समान व्यवहार करितहुँ हुनका मे आत्मभाव अर्थात् अनपत्व समान भेला सँ सुख आ दुःख कैँ समानहिं देखैत अछि, ओहिना सभ भूत मे देखनाइ 'अपन समान' सम देखनाइ अछि।)* आ सुख या दुःख कैँ सेहो सभ मे सम देखैत छथि ओ योगी परमश्रेष्ठ मानल गेल छथि।।३२।।

अर्जुन बजलाह–

यौ मधुसूदन! जे ई योग अहाँ समभाव सँ कहलहुँ अछि, मन कैँ चंचल भेला सँ हम एकर नित्य स्थिति कैँ नहिं देखैत छी।।३३।।

कियैक तऽ यौ कृष्ण! ई मन बड्ड चंचल, प्रमथन स्वभावबला, बड्ड दृढ़ आ बलबान अछि। तैँ ओकर वश मे केनाइ हम वायु कैँ रोकनाइ जकाँ अत्यन्त दुष्कर मानैत छी।।३४।।

श्रीभगवान बजलाह–

हौ महाबाहो! निःसंदेह मन चंचल आ कठिनता सँ वश मे होमऽबला अछि, परन्तु हौ कुन्तीपुत्र अर्जुन! ई अभ्यास *(भगवानक नाम आ गुणक श्रवण, कीर्तन, मनन, आ श्वाँसक द्वारा जप आ भगवत्प्राप्ति विषयक शास्त्रक पठन–पाठन इत्यादि चेष्टा बारम्बार केनाइ)* आ वैराग्य सँ वश मे होइत अछि।।३५।।

जिनक मन वश मे कएल नहिं अछि, एहन पुरुष द्वारा योग दुष्प्राप्य अछि आ वश मे कएल मनबला प्रयत्नशील पुरुष द्वारा साधना सँ ओकर प्राप्त होएब सहज अछि–एहन हमर मत अछि।।३६।।

अर्जुन बजलाह–

यौ कृष्ण! जे योग मे श्रद्धा रखएबला छथि, किन्तु संयमी नहिं छथि, एहि कारण जिनक मन अन्तकाल मे योग सँ विचलित भए गेल छैन्हि, एहन साधक योगक सिद्धि कँ अर्थात् भगवत्साक्षात्कार कँ नहिं पाबि कोन गति कँ प्राप्त होइत छथि?।।३७।।

यौ महाबाहो! की ओ भगवत् प्राप्तिक मार्ग मे मोहित आ आश्रयरहित पुरुष छिन्न–भिन्न मेघ जकाँ दूनू दिश सँ भ्रष्ट भएकऽ नष्ट नहिं भए जाइत छथि?।।३८।।

यौ श्रीकृष्ण! हमर एहि संशय कँ सम्पूर्णरूप सँ छेदन करए लेल अहीं योग्य छी, कियैक तऽ अहाँक सिवाए दोसर एहि संशयक छेदन करएबला भेटब सम्भव नहिं अछि।।३९।।

श्रीभगवान बजलाह–

हौ पार्थ! ओहि पुरुष कँ नहिं तऽ एहि लोक मे नाश होइत अछि आ नहिंए परलोक मे। कियैक तऽ हौ प्रिय! आत्मोद्धारक लेल अर्थात् भगवत्प्राप्तिक लेल कर्म करएबला कोनो मनुष्य दुर्गति कँ प्राप्त नहिं होइत छथि।।४०।।

योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यवानसभक लोक कँ अर्थात् स्वर्गादि उत्तम लोक कँ प्राप्त भए, ओहि मे बहुत वर्ष धरि निवास कएकऽ फेर शुद्ध आचरणबला श्रीमान् पुरुषसभक घर मे जन्म लैत छथि।।४१।।

अथवा वैराग्यवान् पुरुष ओहि लोकसभ मे नहिं जाकए ज्ञानवान् योगीसभक कुल मे जन्म लैत छथि, परन्तु एहि प्रकारक जे ई जन्म अछि, से संसार मे अत्यन्त दुर्लभ अछि।।४२।।

ओतऽ ओ पहिल शरीर मे संग्रह कएल बुद्धि–संयोग कँ अर्थात् समबुद्धिरूप योगक संस्कार सभ कँ अनायासहिं प्राप्त भए जाइत छथि आ हौ कुरुनन्दन! ओकर प्रभाव सँ ओ फेर परमात्माक प्राप्तिरूप सिद्धिक लेल पहिलहुँ सँ बढ़िकए प्रयत्न करैत छथि।।४३।।

ओ *(श्रीमान् सभक घरमे जन्म लेनिहार योगभ्रष्ट पुरुष)* पराधीन होइतहुँ ओहि पहिलुकाँ अभ्यास सँ निःसंदेह भगवानक दिस आकर्षित कएल जाइत छथि आ समबुद्धिरूप योगक जिज्ञासु सेहो वेद मे कहल गेल सकाम कर्मसभ क फल कँ उल्लंघन कए जाइत छथि।।४४।।

परन्तु प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करएबला योगी तऽ पिछला अनेक जन्मसभक संस्कारबल सँ एहि जन्म मे संसिद्ध भएकऽ सम्पूर्ण पाप सभ सँ रहित भए फेर तत्कालहिं परमगति कँ प्राप्त भए जाइत छथि।।४५।।

योगी तपस्वीसभ सँ श्रेष्ठ छथि, शास्त्रज्ञानी सभ सँ सेहो श्रेष्ठ मानल गेल छथि आ सकाम कर्म करएबला सभ सँ सेहो योगी श्रेष्ठ छथि, तँ हौ अर्जुन! तूँ योगी हुअऽ।।४६।।

सभ योगी सभ मे सेहो जे श्रद्धावान् योगी हमरा मे लागल अन्तरात्मा सँ हमरा निरन्तर भजैत छथि, ओ योगी हमरा परम श्रेष्ठ मान्य छथि।।४७।।

एना भगवान द्वारा गायल उपनिषद, ब्रह्मविद्या, योगशास्त्र मे, श्रीकृष्ण आ अर्जुनक बीच भेल संवाद ***आत्मसंयमयोग*** *नामक* ***छठम अध्याय*** *समाप्त भेल।*

सातम अध्याय : ज्ञानविज्ञानयोग

श्रीभगवान बजलाह़–

हौ पार्थ! अनन्य प्रेम सँ हमरा मे आसक्तचित्त आ अनन्यभाव सँ हमर पारायण भएकऽ योग मे लागल तूँ जाहि प्रकार सँ सम्पूर्ण विभूति, बल, ऐश्वर्य आदि गुण सभ सँ युक्त, सभक आत्मरूप हमरा संशयरहित जनबह, ओ सुनह।।१।।

हम तोरा एहि लेल विज्ञान सहित तत्त्वज्ञान कैँ सम्पूर्णतया कहबह, जकरा जानि कए संसार मे फेर आओर किछुओ जानए योग्य बाँचल नहिं रहि जाइत अछि।।२।।

हजारों मनुष्य मे कियो हमर प्राप्तिक लेल यत्न करैत अछि आ ओहि यत्न केनिहार योगी सभ मे सेहो कोनो एक हमर परायण भएकऽ हमरा तत्त्व सँ अर्थात् यथार्थ सँ जनैत अछि।।३।।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि आ अहंकार सेहो–एहि प्रकार आठ प्रकार सँ विभाजित हमर प्रकृति अछि।।४।।

एहि आठ प्रकारक भेदबला तऽ अपरा अर्थात् हमर जड़ प्रकृति अछि आ हौ महाबाहो! एहि सँ दोसर कैँ, जाहि सँ ई सम्पूर्ण जगत धारण कएल जाइत अछि, हमर जीवरूपी परा अर्थात् चेतन प्रकृति जानह।।५।।

हौ अर्जुन! तूँ एहन बुझऽ कि सम्पूर्ण भूत एहि दूनू प्रकृति सँ उत्पन्न होमऽबला अछि आ हम सम्पूर्ण जगत कैँ प्रभव आ प्रलय छी अर्थात् सम्पूर्ण जगत कैँ मूल कारण छी।।६।।

हौ धनंजय! हमरा सँ भिन्न दोसर कोनो परम कारण नहिं अछि। ई सम्पूर्ण जगत सूत्र मे सूत्रक मणि सभ जकाँ हमरा मे गाँथल अछि।।७।।

हौ अर्जुन! हम जल मे रस छी, चन्द्रमा आ सूर्य मे प्रकाश छी, सम्पूर्ण वेद मे ओंकार छी, आकाश मे शब्द आ पुरुष सभ मे पुरुषत्व छी।।८।।

हम पृथ्वी मे पवित्र *(शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध एहि प्रसंग मे कारणरूप हुनक मात्रासभक ग्रहण अछि, एहि बात कैँ स्पष्ट करए लेल हुनक संग पवित्र शब्द जोड़ल गेल अछि)* गन्ध आ अग्नि मे तेज छी आओर सम्पूर्ण भूत सभ मे हुनक जीवन छी आ तपस्वी सभ मे तेज छी।।९।।

हौ अर्जुन! तूँ सम्पूर्ण भूतक सनातन बीज हमरहिं जानह। हमहिं बुद्धिमान सभक बुद्धि आ तेजस्वी सभक तेज छी।।१०।।

हौ भरतश्रेष्ठ! हम बलबान सभक आसक्ति आ कामना सभसँ रहित बल अर्थात् सामर्थ्य छी आ सभ भूत सभ मे धर्मक अनुकूल अर्थात् शास्त्रक अनुकूल काज छी।।११।।

आओरो जे सत्वगुण सँ उत्पन्न होमऽबला भाव अछि आ जे रजोगुण आ तमोगुण सँ उत्पन्न होमऽबला भाव अछि, ओहि सब कैँ तूँ 'हमरहिं सँ होमऽबला अछि', एहन बुझऽ, मुदा वास्तव मे *(अध्याय ६: श्लोक ४–५ मे देखक चाही)* ओहि सभ मे हम नहिं छी आ ओ सभ हमरा मे नहिं छथि।।१२।।

गुणसभक कार्यरूप सात्विक, राजस आ तामस–एहि तीनू प्रकारक भाव सँ ई पूरा संसार–प्राणि समुदाय मोहित भए रहल अछि, एहि लेल एहि तीन गुण सँ ऊपर हमरा अविनाशी कैँ नहिं जनैत अछि।।१३।।

कियैक तऽ ई अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमय हमर माया बहुत कठिन अछि; किन्तु जे पुरुष केवल हमरहिं निरन्तर भजैत छथि, ओ एहि माया कैँ पार कए जाइत छथि अर्थात् संसार सँ तरि जाइत छथि।।१४।।

मायाक स्वभाव द्वारा जिनक ज्ञान हरल जा चुकल अछि एहन आसुर स्वभाव कैँ धारण कएल मनुष्य सभ मे नीच दूषित कर्म करएबला मूर्ख सभ हमर भजन नहिं करैत छथि।।१५।।

हौ भरतवंशी सभ मे श्रेष्ठ अर्जुन! उत्तम कर्म करएबला सांसारिक पदार्थ सभ लेल भजन करएबला *(अर्थार्थी),* संकट निवारण लेल भजन करएबला *(आर्त्त),* हमरा यथार्यरूप सँ जानक इच्छा सँ भजन करएबला *(जिज्ञासु)* आ *ज्ञानी*– एहन चारि प्रकार कैँ भक्तजन हमरा भजैत छथि।।१६।।

ओहि मे नित्य हमरा मे एकीभाव सँ स्थित अनन्य प्रेमभक्तिबला ज्ञानी भक्त अति उत्तम छथि, कियैक तऽ हमरा तत्त्व सँ जननिहार ज्ञानी कैँ हम अत्यन्त प्रिय छी आ ओ ज्ञानी हमरा अत्यन्त प्रिय छथि।।१७।।

ई सभ उदार छथि, किन्तु ज्ञानी तऽ साक्षात् हमरहिं स्वरूप छथि–एहन हमर मत अछि, कियैकऽ तऽ ओ हमरा मे समाएल मन–बुद्धिबला ज्ञानी भक्त अति उत्तम गति स्वरूप हमरा मे नीकजकाँ स्थित छथि।।१८।।

बहुतो जन्मक अन्तक जन्म मे तत्त्वज्ञान कैँ प्राप्त पुरुष, सभ किछु वासुदेवहिं छथि–एहि प्रकार हमरा भजैत छथि, ओ महात्मा अत्यन्त दुर्लभ छथि।।१६।।

ओहि–ओहि भोग सभक कामना द्वारा जिनक ज्ञान हरा चुकल छैन्हि, ओ सभ अपन स्वभाव सँ प्रेरित भए कँ ओहि–ओहि नियम कैँ धारण कएकऽ अन्य देवता सभ कैँ भजैत छथि।।२०।।

जे–जे सकाम भक्त जाहि–जाहि देवताक स्वरूप कैँ श्रद्धा सँ पूजए चाहैत छथि, ओहि–ओहि भक्तक श्रद्धा कैँ हम ओहि देवताक प्रति स्थिर करैत छी।।२१।।

ओ पुरुष ओहि श्रद्धा सँ युक्त भएकऽ ओहि देवताक पूजन करैत छथि आ ओहि देवता सँ हमरहिं द्वारा विधान कएल ओहि इच्छित भोग सभ कैँ निःसंदेह प्राप्त करैत छथि।।२२।।

परन्तु ओहि अल्प बुद्धिबला सभक ओ फल नाशवान अछि आ ओहि देवता सभ कैँ पूजएबला ओहि देवता सभ कैँ प्राप्त होइत छथि आ हमर भक्त चाहे जेना भजथि, अन्त मे ओ हमरहिं प्राप्त होइत छथि।।२३।।

बुद्धिहीन पुरुष हमर अनुत्तम अविनाशी परम भाव कैँ नहिं जनैत मन–इन्द्रिय सभ सँ उपर हमरा सच्चिदानन्दघन परमात्मा कैँ–मनुष्यक जकाँ जनमि कँए व्यक्तिभाव कैँ प्राप्त भेल मानैत छथि।।२४।।

अपन योगमाया सँ नुकाएल हम सभ कैँ प्रत्यक्ष नहिं होइत छी, तैँ ओ अज्ञानी जनसमुदाय हमरा जन्मरहित अविनाशी परमेश्वर कँ नहिं जनैत छथि अर्थात् हमरा जनमए–मरएबला बुझैत छथि।।२५।।

हौ अर्जुन! पूर्व मे बीतल आ वर्त्तमान मे स्थित आ आगाँ होमऽबला सभ भूत कँ हम जनैत छी, किन्तु हमरा कियो श्रद्धा–भक्तिरहित पुरुष नहिं जनैत छथि।।२६।।

हौ भरतवंशी अर्जुन! संसार मे इच्छा आ द्वेष सँ उत्पन्न सुख–दुःख आदि द्वन्द्वरूप मोह सँ सम्पूर्ण प्राणी अत्यन्त अज्ञता कँ प्राप्त भए रहल छथि।।२७।।

परन्तु निष्काम भाव सँ श्रेष्ठ कर्मक आचरण करएबला जाहि पुरुषक पाप नष्ट भए गेल छैन्हि, ओ राग–द्वेषजनित द्वन्द्वरूप मोह सँ मुक्त दृढ़निश्चयी भक्त हमरा सभ प्रकार सँ भजैत छथि।।२८।।

जे हमर शरण मे आबि बुढ़ौती आ मृत्यु सँ छूटए कँ लेल यत्न करैत छथि, ओ पुरुष ओहि ब्रह्म कँ, सम्पूर्ण अध्यात्म कँ, सम्पूर्ण कर्म कँ जनैत छथि।।२९।।

जे पुरुष अधिभूत आ अधिदैवक सहित आ अधियज्ञक सहित*(सभक आत्मरूप)* हमरा अन्तकाल मे सेहो जनैत छथि, ओ युक्तचित्तबला पुरुष हमरा जनैत छथि अर्थात् प्राप्त भए जाइत छथि।।३०।।

एना भगवान द्वारा गायल उपनिषद, ब्रह्मविद्या, योगशास्त्र मे, श्रीकृष्ण आ अर्जुनक बीच भेल संवाद ***ज्ञानविज्ञानयोग*** *नामक* ***सातम अध्याय*** *समाप्त भेल।*

आठम अध्याय : अक्षरब्रह्मयोग

अर्जुन बजलाह़–

यौ पुरुषोत्तम! ओ ब्रह्म की अछि? अध्यात्म की अछि? कर्म की अछि? अधिभूत नाम सँ की कहल गेल अछि आ अधिदैव ककरा कहैत छी?।।१।।

यौ मधुसूदन! एतऽ अधियज्ञ के छथि? आ ओ एहि शरीर मे केना छथि? आओर युक्तचित्तबला पुरुष द्वारा अन्त समय मे अहाँ कोना जानल जाइत छी?।। २।।

श्रीभगवान बजलाह़–

परम अक्षर 'ब्रह्म' थिक, अपन स्वरूप अथवा जीवात्मा 'अध्यात्म' नाम सँ कहल जाइत अछि आओर भूत सभक भाव कँ उत्पन्न करएबला जे त्याग अछि, ओ 'कर्म' नाम सँ कहल गेल अछि।। ३।।

उत्पत्ति–विनाश धर्मबला सभ पदार्थ अधिभूत छथि, हिरण्यमय पुरुष *(जिनका शास्त्र सभ मे 'सूत्रात्मा',' हिरण्यगर्भ', 'प्रजापति', 'ब्रह्मा' इत्यादि नाम सँ कहल गेल अछि)* अधिदैव छथि आ हौ देहधारी सभ मे श्रेष्ठ अर्जुन! एहि शरीर मे हम– वासुदेवहिं अन्तर्यामी रूप सँ अधियज्ञ छी।। ४।।

जे पुरुष अन्त काल मे सेहो हमरहिं स्मरण करैत शरीर कँ त्याग कए जाइत छथि, ओ हमर साक्षात् स्वरुप कँ प्राप्त होइत छथि–एहि मे किछुओ संशय नहिं अछि।।५।।

हौ कुन्तीपुत्र अर्जुन! ई मनुष्य अन्तकाल मे जाहि–जाहि भाव कँ स्मरण करैत शरीर कँ त्याग करैत छथि, ओहि–ओहि कँ प्राप्त होइत छथि, कियैकऽ तऽ ओ हमेशा ओहि भाव सँ भावित रहल छथि।।६।।

तैँ हौ अर्जुन! तूँ सभ समय मे निरन्तर हमर स्मरण करऽ आ युद्ध सेहो करऽ। एहि प्रकार हमरा मे अर्पण कएल मन–बुद्धि सँ युक्त भएकऽ तूँ निःसंदेह हमरहिं प्राप्त हेबह।।७।।

हौ पार्थ! ई नियम अछि कि परमेश्वरक ध्यान कँ अभ्यासरूप योग सँ युक्त, दोसर दिस नहिं जाइबला चित्त सँ निरन्तर चिन्तन करैत मनुष्य परम प्रकाशरूप दिव्य पुरुष कँ अर्थात् परमेश्वरहिं कें प्राप्त होइत छथि।।८।।

जे पुरुष सर्वज्ञ, अनादि, सभ कँ नियन्ता*(अन्तर्यामीरूप सँ सभ प्राणी कँ शुभ आ अशुभ कर्मक अनुसार शासन करएबला)*, सूक्ष्महुँ सँ सूक्ष्म सभ कँ धारण–पोषण करएबला अचिन्त्यस्वरूप, सूर्यक जकाँ नित्यचेतन प्रकाशरूप आ अविद्या सँ अति दूर, शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमेश्वर कँ स्मरण करैत छथि।।९।।

ओ भक्तियुक्त पुरुष अन्तकाल मे सेहो योगबल सँ भृकुटीक मध्य मे प्राण कँ नीाजकाँ स्थापित कएकऽ, फेर निश्चल मन सँ स्मरण करैत ओहि दिव्यरूप परमात्मे कँ प्राप्त होइत छथि।।१०।।

वेद कँ जननिहार विद्वान् जाहि सच्चिदानन्दघनरूप परमपद कँ अविनाशी कहैत छथि, आसक्तिरहित यत्नशील संन्यासी महात्माजन जाहि मे प्रवेश करैत छथि आ जाहि परमपद कँ चाहनिहार ब्रह्मचारी सभ ब्रह्मचर्यक आचरण करैत छथि, ओहि परमपद कँ हम अहाँक लेल संक्षेप सँ कहब।।११।।

सभ इन्द्रिय कँ द्वार सभ कँ रोकि कए आ मन कँ हृदय देश मे स्थिर कएकऽ, फेर ओहि जीतल मन कँ द्वारा प्राण कँ माथ मे स्थपित कँएकऽ, परमात्मा सम्बन्धी योगधारणा मे स्थित श्एकऽ जे पुरुष 'ओऽम' एहि एक अक्षररूप ब्रह्म कँ चिन्तन करैत शरीर कँ त्याग कए जाइत छथि, ओ पुरुष परमगति कँ प्राप्त होइत छथि।।१२–१३।।

हौ अर्जुन! जे पुरुष हमरा मे अनन्यचित्त भए सदिखन निरन्तर हमर– पुरुषोत्तम कँ स्मरण करैत अछि, ओहि नित्य निरन्तर हमरा मे युक्त भेल योगीक लेल हम सुलभ छी अर्थात् हुनका सहजहिं मे प्राप्त भए जाइत छी।।१४।।

परमसिद्धि कँ प्राप्त महात्माजन हमरा प्राप्त भए दुःख सभक घर आओर क्षणभंगुर पुनर्जन्म कँ प्राप्त नहिं होइत छथि।।१५।।

हौ अर्जुन! ब्रह्मलोकपर्यन्त सभ लोक पुनरावर्ती *(फेर सँ आबए–जाएबला)* छथि, परन्तु हौ कुन्तीपुत्र! हमरा प्राप्त भए पुनर्जन्म नहिं होइत अछि कियैक तऽ हम कालातीत छी आ ई सभ ब्रह्मा आदिक लोक कालक द्वारा सीमित भेला सँ अनित्य छथि।।१६।।

ब्रह्माक जे एक दिन अछि, ओकरा एक हजार चतुर्युगी तक कँ अवधिबला आओर रात्रि कँ सेहो एक हजार चतुर्युगी तक कँ अवधिबला जे पुरुष तत्त्व सँ जनैत छथि, ओ योगीजन कालक तत्त्व कँ जननिहार छथि।।१७।।

सम्पूर्ण चराचर भूतगण ब्रह्माक दिनक प्रवेशकाल मे अव्यक्त सँ अर्थात् ब्रह्माक सूक्ष्म शरीर सँ उत्पन्न होइत छथि आ ब्रह्माक रात्रिक प्रवेशकाल मे ओहि अव्यक्त नामक ब्रह्माक सूक्ष्म शरीरमे लीन भए जाइत छथि।।१८।।

हौ पार्थ! वैह ई भूतसमुदाय उत्पन्न भए कऽ प्रकृतिक वश मे भेल रात्रिक प्रवेशकाल मे लीन होइत अछि आ दिनक प्रवेशकाल मे फेर उत्पन्न होइत अछि।।१९।।

ओहि अव्यक्तहुँ सँ अत्यन्त उपर अर्थात् विलक्षण जे सनातन अव्यक्त भाव अछि, वैह परम दिव्य पुरुष सभ भूत कँ नष्ट भेलहुँ पर नष्ट नहिं होइत अछि।।२०।।

ओ अव्यक्त 'अक्षर' एहि नाम सँ कहल गेल अछि, ओहि अक्षर नामक अव्यक्तभाव कँ परमगति कहैत छैक आ जाहि सनातन अव्यक्तभाव कँ प्राप्त भए मनुष्य वापस नहिं अबैत छथि, वैह हमर परमधाम अछि।।२१।।

हौ पार्थ! जाहि परमात्मा कँ अन्तर्गत सभ भूत छथि आ जाहि सच्चिदानन्दघन परमात्मा मे ई समस्त जगत परिपूर्ण अछि *(अध्याय ९: श्लोक ४ देखक चाही),*ओ सनातन अव्यक्त परम पुरुष तँ अनन्य *(अध्याय ११:श्लोक ५५ मे एकर विस्तार देखक चाही),* भक्तिए सँ प्राप्त होमऽ योग्य छथि।।२२।।

हौ अर्जुन! काल *('मार्ग'/'सृति'/'गति')* मे शरीर त्याग कए गेल योगीजन ने तऽ वापस लौटएबला गति कँ आ जाहि कालमे गेल वापस लौटएबला गति कँ प्राप्त होइत छथि, ओहि काल अर्थात् दूनू मार्ग कँ हम कहब।।२३।।

जाहि मार्ग मे ज्योतिर्मय अग्नि–अभिमानी देवता छथि, दिनक अभिमानी देवता छथि, शुक्लपक्षक अभिमानी देवता छथि आ उत्तरायणक छः महीनाक अभिमानी देवता छथि, ओहि मार्ग मे मरि कए गेल ब्रह्मवेत्ता योगीजन उपर बताओल देवता सभ द्वारा क्रमशः लए जा कऽ ब्रह्म कँ प्राप्त होइत छथि।।२४।।

जाहि मार्ग मे धूमाभिमानी देवता छथि, रात्रिक अभिमानी देवता छथि आ कृष्णपक्षक अभिमानी देवता छथि आ दक्षिणायणक छः महीनाक अभिमानी देवता छथि, ओहि मार्ग मे मरि कए गेल सकाम कर्म करएबला योगी उपर बताओल देवता सभ द्वारा क्रमशः लए जा कऽ चन्द्रमाक ज्योति कँ प्राप्त भए स्वर्ग मे अपन शुभ कर्म सभक फल भोगि वापस अबैत छथि।।२५।।

कियैक तऽ जगत मे यैह दू प्रकारक–शुक्ल आ कृष्ण अर्थात् देवयान आ पितृयान मार्ग सनातन मानल गेल अछि। एहि मे एक *(उपरक श्लोक २४ क अनुसार अर्चिमार्ग सँ गेल ब्रह्मवेत्ता योगी)* कँ द्वारा गेल कँ वापस नहिं लौटए पड़ैत छैन्हि आ ओ ओहि परमगति कँ प्राप्त होइत छथि आ दोसर *(उपरक श्लोक २५ क अनुसार धूममार्ग सँ गेल सकाम कर्मयोगी)* कँ द्वारा गेल फेर वापस लौटैत छथि अर्थात् जन्म–मृत्यु कँ प्राप्त होइत छथि।।२६।।

हौ पार्थ! एहि प्रकार एहि दूनू मार्ग कँ तत्त्व सँ जानि कए कोनो योगी मोहित नहिं होइत छथि। एहि कारण हौ अर्जुन! तूँ सभ काल मे समबुद्धिरूप योग सँ युक्त हुअऽ अर्थात् निरन्तर हमर प्राप्ति कँ लेल साधन करएबला हुअऽ।।२७।।

योगी पुरुष एहि रहस्य कँ तत्त्व सँ जानि कए वेद सभ कँ पढ़ए मे आओर यज्ञ, तप, आ दान आदि करए मे जे पुण्यफल कहल गेल अछि, ओहि सभ सँ निःसंदेह आगाँ निकलि जाइत छथि आ सनातन परमपद कँ प्राप्त होइत छथि।।२८।।

एना भगवान द्वारा गायल उपनिषद, ब्रह्मविद्या, योगशास्त्र मे, श्रीकृष्ण आ अर्जुनक बीच भेल संवाद ***अक्षरब्रह्मयोग*** *नामक* ***आठम*** *अध्याय समाप्त भेल।*

नवम अध्याय : राजविद्याराजगुह्ययोग

श्रीभगवान बजलाह़—

तोरा—जे कि दोषदृष्टिरहित भक्त छऽ—कँ लेल एहि परमगोपनीय विज्ञानसहित ज्ञान कँ फेर सँ नीकजकाँ कहबह, जकरा जानि कए तूँ दुःखरूप संसार सँ मुक्त भए जेबऽ।।१।।

ई विज्ञानसहित ज्ञान सभ विद्याक राजा, सभ गोपनीय सभक राजा, अतिपवित्र, अति उत्तम, प्रत्यक्ष फलबला, धर्मयुक्त,साधन करए मे बड्ड सुगम आ अविनाशी अछि।।२।।

हौ परंतप! एहि उपर्युक्त धर्म मे श्रद्धारहित पुरुष हमरा नहिं पाबि कए संसारचक्र मे भ्रमण करैत रहैत छथि।।३।।

हमरा—निराकार परमात्मा—सँ ई सभ जगत जल सँ बरफक समान परिपूर्ण अछि आ सभ भूत हमर अन्तर्गत संकल्पक आधार स्थित छथि,किन्तु वास्तव मे हम हुनका मे स्थित नहिं छी।। ४।।

ओ सभ भूत हमरा मे स्थित नहिं छथि; किन्तु हमर ईश्वरीय योगशक्ति कँ देखऽ कि भूत सभ कँ धारण—पोषण करएबला हमर आत्मा सेहो वास्तव मे भूत सभ मे स्थित नहिं अछि।।५।।

जेना आकाश सँ उत्पन्न सर्वत्र बिचरएबला महान वायु सदा आकाशहिं मे स्थित अछि, ओहिना हमर संकल्प द्वारा उत्पन्न भेला सँ सम्पूर्ण भूत हमरा मे स्थित अछि, एहेन बुझऽ।।६।।

हौ अर्जुन! कल्प सभक अन्त मे सभ भूत हमर प्रकृति कँ प्राप्त होइत छथि अर्थात् प्रकृति मे लीन होइत छथि आ कल्प सभक आदि मे हुनका फेर हम रचैत छी।।७।।

अपन प्रकृति कँ अंगीकार कएकऽ स्वभावक बल सँ परतन्त्र भेल एहि सम्पूर्ण भूत समुदाय कँ बेर—बेर हुनक कर्मक अनुसार रचैत छी।।८।।

हौ अर्जुन! ओहि कर्म सभ मे आसक्तिरहित आ उदासीनक समान *(जिनक सम्पूर्ण कार्य कर्तृत्वभावक बिना स्वयमेव सत्तामात्रटाऽ सँ होइत छैन्हि)* स्थित हमरा— परमात्मा कँ ओ कर्म नहिं बन्हैत छथि।।६।।

हौ अर्जुन! हमरा—अधिष्ठाता कँ— सकाश सँ प्रकृति चराचरसहित सभ जगत कँ रचैत छथि आ एहि हेतु टा सँ ई संसारचक्र घूमि रहल अछि।।१०।।

हमर परमस्वभाव *(अनुत्तम, अविनाशी—अध्याय ७: श्लोक २४ देखू)* कँ नहिं जननिहार मूढ़ लोकसभ मनुष्यक शरीर धारण करएबला हमरा—सम्पूर्ण भूत सभक महान ईश्वर कँ— तुच्छ बुझैत छथि अर्थात् अपन योगमाया सँ संसारक उद्धार लेल मनुष्यरूप मे विचरैत हमरा—परमेश्वर कँ साधारण मनुष्य मानैत छथि।११।।

ओ व्यर्थ आशा, व्यर्थ कर्म आ व्यर्थ ज्ञानबला विक्षिप्तचित्त अज्ञानीजनसभ राक्षसी, आसुरी आ मोहिनी प्रकृतिहिं *(अध्याय १६: श्लोक ४ आ ७—११ तक विस्तार मे देखू)* कँ धारण केने रहैत छथि।।१२।।

परन्तु हौ कुन्तीपुत्र! दैवी प्रकृति कैं *(अध्याय १६ः श्लोक १–३ तक विस्तार मे देखू)* आश्रित महात्माजन हमरा सभ भूतक सनातन कारण आ नाशरहित अक्षरस्वरूप जानि कए अनन्य मन सँ युक्त भए निरन्तर भजैत छथि।।१३।।

ओ दृढ़निश्चयबला भक्तजन निरन्तर हमर नाम आ गुणसभक कीर्तन करैत आ हमर प्राप्तिक लेल यत्न करैत आ हमरा बेर–बेर प्रणाम करैत सदा हमर ध्यान मे युक्त भए अनन्य प्रेम सँ हमर उपासना करैत छथि।।१४।।

दोसर ज्ञानयोगी हमरा, निर्गुण–निराकार ब्रह्म कैं–ज्ञानयज्ञक द्वारा अभिन्नभाव सँ पूजन करितहुँ हमर उपासना करैत छथि आ दोसर मनुष्य बहुत प्रकार सँ स्थित हमरा–विराटस्वरूप परमेश्वर कैं–पृथक् भाव सँ उपासना करैत छथि।।१५।।

क्रतु हम छी, यज्ञ हम छी, स्वधा हम छी, औषधि हम छी, मन्त्र हम छी, घी हम छी, आगि हम छी आओर हवनरूप क्रिया सेहो हमहिं छी।।१६।।

एहि सम्पूर्ण जगतक धाता अर्थात् धारणकरएबला आ सभ कर्मक फल देनिहार, पिता, माता, पितामह, जानएयोग्य *(अध्याय १३ः श्लोक १२–१७ तक देखू)*, पवित्र ओंकार आओर ऋगवेद, सामवेद आ यजुर्वेद सेहो हमहिं छी।।१७।।

प्राप्त होइ योग्य परम धाम, भरण–पोषण केनिहार, सबहक स्वामी, शुभ–अशुभ देखनिहार, सभ कैं वासस्थान, शरण लेब योग्य, बदला मे उपकार नहिं चाहि हित केनिहार, सभक उत्पत्ति–प्रलयक हेतु, स्थितिक आधार, *(प्रलयकाल मे सभ भूत सूक्ष्मरूप सँ जाहि मे लय होइत छथि से)*निधान आओर अविनाशी कारण सेहो हमहिं छी।।१८।।

हमहिं सूर्यरूप सँ तपैत छी, वर्षाक आकर्षण करैत छी आ ओकरा बरसबैत छी। हौ अर्जुन! हमहिं अमृत आ मृत्यु छी आओर सत्–असत् सेहो हमहिं छी।।१६।।

तीनों वेद मे विधान कएल सकाम कर्म सभ कैं करएबला, सोमरस कैं पीबएबला, पापरहित *(स्वर्गप्राप्तिक प्रतिबन्धक देवऋणरूप पाप सँ पवित्र)* पुरुष हमरा यज्ञ सभक द्वारा पूजिकए स्वर्गक प्राप्ति चाहैत छथि, ओ पुरुष अपन पुण्यसभक फलरूप स्वर्गलोक कैं प्राप्त भए स्वर्ग मे दिव्य देवतासभक भोगसभ भोगैत छथि।।२०।।

ओ ओहि विशाल स्वर्गलोक कैं भोगिकए पुण्य क्षीण भेला पर मृत्युलोक कैं प्राप्त होइत छथि। एहि प्रकार स्वर्ग कैं साधनरूप तीनू वेद मे कहल सकाम कर्मक आश्रय लेनिहार आ भोग सभक कामनाबला पुरुष बेर–बेर आवागमन कैं प्राप्त होइत छथि अर्थात् पुण्यक प्रभाव सँ स्वर्ग जाइत छथि आ पुण्य कैं क्षीण भेला पर मृत्युलोक मे अबैत छथि।।२१।।

जे अनन्यप्रेमी भक्तजन हमरा–परमेश्वर कैं– निरन्तर चिन्तन करैत निष्कामभाव सँ भजैत छथि, ओहि नित्य निरन्तर हमर चिन्तन करएबला पुरुषसभक योगक्षेम *(भगवतस्वरूपक प्राप्तिक नाम 'योग' अछि आ भगवतप्राप्तिक निमित्त कएल साधनक रक्षाक नाम 'क्षेम' अछि)* हम स्वयं प्राप्त कए दैत छी।।२२।।

हौ अर्जुन! यद्यपि श्रद्धा सँ युक्त जे सकाम भक्त दोसर देवता सभ कैं पूजैत छथि, ओहो हमरहिं पूजैत छथि; किन्तु हुनक ओ पूजन अविधिपूर्वक अर्थात् अज्ञानपूर्वक छैन्हि।।२३।।

कियैकऽ तऽ सम्पूर्ण यज्ञसभक भोक्ता आ स्वामी सेहो हमहिं छी; परन्तु ओ हमरा–परमेश्वर कैं–तत्त्व सँ नहिं जनैत छथि, एहि सँ खसैत छथि अर्थात् पुनर्जन्म कैं प्राप्त होइत छथि।।२४।।

देवतासभ कँ पूजएबला देवतासभ कँ प्राप्त होइत छथि, पितरसभ कँ पूजएबला पितरसभ कँ प्राप्त होइत छथि, भूतसभ कँ पूजएबला भूतसभ कँ प्राप्त होइत छथि आ हमरा पूजएबला भक्त हमरहिं प्राप्त होइत छथि। तेँ हमर भक्तसभक पुनर्जन्म नहिं होइत अछि *(अध्याय ८: श्लोक ६ देखू)* ।।२५।।

जे कोनो भक्त हमरा लेल प्रेम सँ पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करैत अछि, ओहि शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तक प्रेमपूर्वक अर्पण कएल ओ पत्र–पुष्प आदि हम सगुणरूप सँ प्रकट भए प्रीतिक संग खाइत छी।।२६।।

हौ अर्जुन! तूँ जे कर्म करैत छऽ, जे खाइत छऽ, जे हवन करैत छऽ, जे दान दैत छऽ आ जे तप करैत छऽ, ओ सभ हमरा अर्पण करऽ।।२७।।

एहि प्रकार, जाहि मे सभ कर्म हमरा–भगवान कँ– अर्पण होइत अछि–एहन संन्यासयोग सँ युक्त चित्तबला तूँ शुभाशुभ फलरूप कर्मबन्धन सँ मुक्त भए हमरहिं प्राप्त हेबह।।२८।।

हम सभ भूतसभ मे समभाव सँ व्यापक छी–ने कियो हमर अप्रिय अछि आ ने प्रिय अछि; किन्तु जे भक्त हमरा प्रेम सँ भजैत छथि, ओ हमरा मे छथि आ हमहुँ हुनकहिं मे प्रत्यक्ष प्रकट छी *(जेना सूक्ष्मरूप सँ सभ जगह व्यापक होइतहुँ आगि साधन सभ द्वारा प्रकट केलहिं सँ प्रकट होइत अछि, तहिना सभ ठाम स्थित भेनहुँ परमेश्वर भक्ति सँ भजएबलाटा कँ अन्तःकरण मे प्रत्यक्षरूप सँ प्रकट होइत छथि)*।।२९।।

यदि कोनो अतिशय दुराचारिओ अनन्यभाव सँ हमर भक्त भए हमरा भजैत अछि, तइयो ओ साधुए मानए योग्य अछि, कियेकऽ तऽ ओ यथार्थ निश्चयबला अछि अर्थात् ओ नीकजकाँ निश्चय कए लेलक अछि जे परमेश्वरक भजनक समान दोसर किछुओ नहिं अछि।।३०।।

ओ शीघ्रहिं धर्मात्मा भए जाइत अछि आ हमेशा रहएबला परमशान्ति कँ प्राप्त होइत अछि। हौ अर्जुन! तूँ निश्चयपूर्वक सत्य जानऽ कि हमर भक्त नष्ट नहिं होइत अछि।।३१।।

हौ अर्जुन! स्त्री, वैश्य, शूद्र आ पापयोनि चाण्डाल सभ मे जे कोनहुँ होथि, ओहो हमर शरण भए परमगति कँ प्राप्त होइत छथि।।३२।।

फेर एहि मे तऽ कहनाइए कि जे पुण्यशील ब्राह्मण आ राजर्षि भक्तजन हमर शरण भए परमगति कँ प्राप्त होइत छथि। तेँ तूँ सुखरहित आ क्षणभंगुर एहि मनुष्य शरीर कँ प्राप्त भए निरन्तर हमरहिं भजन करऽ।।३३।।

हमरा मे मनबला हुअऽ, हमर भक्त बनि, हमर पूजन करएबला हुअऽ, हमरा प्रणाम करऽ। एहि प्रकार आत्मा कँ हमरा मे नियुक्त कएकऽ हमर परायण भएकऽ तूँ हमरहिं प्राप्त हेबह।।३४।।

*एना भगवान द्वारा गायल उपनिषद, ब्रह्मविद्या, योगशास्त्र मे, श्रीकृष्ण आ अर्जुनक बीच भेल संवाद **राजविद्याराजगुह्ययोग** नामक **नवम** अध्याय समाप्त भेल।*

दशम अध्याय : विभूतियोग

श्रीभगवान बजलाह्—

हौ महाबाहो! तैयो हमर परम रहस्य आ प्रभावयुक्त वचन के सुनऽ, जकरा हम तोरा— अतिशय प्रेम रखएबला कँ—लेल हितक इच्छा सँ कहबह।।१।।

हमर उत्पत्ति कँ अर्थात् लीला सँ प्रकट होएबा कँ नहिंए देवता सभ जनैत छथि आ नहिंए महर्षि सभ कियैक तऽ हम सभ प्रकार सँ देवता सभ कँ आ महर्षि सभक सेहो आदिकारण छी।।२।।

जे हमरा अजन्मा अर्थात् वास्तव मे जन्मरहित, अनादि *(आदिरहित आ सभक कारण)* आ लोक सभक महान् ईश्वर तत्त्व सँ जनैत छथि, ओ मनुष्यसभ मे ज्ञानवान पुरुष सभ पाप सँ मुक्त भए जाइत छथि।।३।।

बुद्धि *(निश्चय करक शक्ति),* यथार्थ ज्ञान, असम्मूढ़ता, क्षमा, सत्य, इन्द्रियसभ कँ वश मे केनाइ, मनक निग्रह आओर सुख—दुःख, उत्पत्ति—प्रलय आ भय—अभय, अहिंसा, समता, सन्तोष, तप *(स्वधर्म आचरण सँ इन्द्रिय आदि कँ तपा कए शुद्ध करब),* दान, कीर्ति, आओर अपकीर्ति—एहन ई सभ प्राणी सभक अनेकानेक प्रकारक भाव हमरहिं सँ होइत अछि।।४—५।।

सात महर्षिगण, चारि हुनकहुँ सँ पहिले होमऽबला सनकादि आओर स्वयाम्भुव आदि चौदह मनु—ई सभ हमरा मे भावबला सभ के सभ हमरहिं संकल्प सँ उत्पन्न भेलाह अछि, जिनकर संसार मे समस्त प्रजा छैन्हि।।६।।

जे पुरुष हमर एहि परम ऐश्वर्यरूप विभूति आ योगशक्ति कँ तत्त्व *(जे किछु दृश्यमात्र संसार मे छथि, ओ सभ भगवानक माया अछि आ एक वासुदेवहिं सर्वत्र परिपूर्ण छथि)* सँ जनैत छथि, ओ निश्चल भक्तियोग सँ युक्त भए जाइत छथि—एहि मे किछुओ संशय नहिं अछि।।७।।

हम वासुदेवहिं सम्पूर्ण जगतक उत्पत्तिक कारण छी आ हमरहिं सँ सभ जगत चेष्टा करैत अछि, एहि प्रकार बुझि कए श्रद्धा आ भक्ति सँ युक्त बुद्धिमान भक्तजन हमरहिं—परमेश्वरहिं—कँ निरन्तर भजैत छथि।।८।।

निरन्तर हमरा मे मन लगबएबला आ हमरहिं मे अपन प्राणक अर्पण करएबला *(हमरहिं—वासुदेवहिं—लेल जे अपन जीवन अर्पण कए देलैन्हि अछि, हुनक नाम 'मद्गतप्राणाः' छैन्हि)* भक्तजन हमर भक्तिक चर्चाक द्वारा आपस मे हमर प्रभाव कँ जनबैत आओर गुण आ प्रभाव सहित हमर कथन करितहिं निरन्तर सन्तुष्ट होइत छथि आ हमरहिं—वासुदेवहिं—मे निरन्तर रमण करैत छथि।।६।।

ओहि निरन्तर हमर ध्यान आदि मे लागल आओर प्रेमपूर्वक भजन केनिहार भक्त सभ कँ हम ओ तत्त्वज्ञानरूप योग दैत छियैन्हि, जाहि सँ ओ हमरहिं प्राप्त होइत छथि।।१०।।

हौ अर्जुन! हुनका उपर अनुग्रह करैक लेल हुनक अन्तःकरण मे स्थित भेल हमहिं स्वयं हुनक अज्ञान सँ उत्पन्न भेल अन्धकार कँ प्रकाशमय तत्त्वज्ञानरूप दीप कँ द्वारा नष्ट कए दैत छी।।११।।

अर्जुन बजलाह्—

अहाँ परम धाम आ परम पवित्र छी कियैक तऽ अहाँ कँ सभ ऋषिगण सनातन, दिव्य पुरुष एवं देवसभक सेहो आदिदेव, अजन्मा आओर सर्वव्यापी कहैत छथि। तहिना देवर्षि नारद आओर असित आ देवल ऋषि आ महर्षि व्यास सेहो कहैत छथि आ अहाँ हमरा प्रति कहैत छी।।१२—१३।।

यौ केशव! जे किछुओ हमरा प्रति अहाँ कहैत छी, एहि सभ कँ हम सत्य मानैत छी। यौ भगवन्! अहाँक लीलामय *(अध्याय ४: श्लोक ६ मे विस्तार देखू)* स्वरूप कँ ने तऽ दानव जनैत छथि आ नहिंए देवता।।१४।।

यौ भूत सभ कँ उत्पन्न केनिहार! यौ भूत सभक ईश्वर! यौ देव सभक देव! यौ जगतक स्वामी! यौ पुरुषोत्तम! अहाँ स्वयं मात्र अपना सँ अपना कँ जनैत छी।।१५।।

तँ अहीं अपन ओहि दिव्य विभूति सभ कँ सम्पूर्णता सँ कहए मे समर्थ छी, जाहि विभूति सभक द्वारा अहाँ एहि सभ लोक कँ व्याप्त कएकऽ स्थित छी।।१६।।

यौ योगेश्वर! हम केहिं प्रकार निरन्तर चिन्तन करैत अहाँ कँ जानी आ यौ भगवन्! अहाँ केहि –केहि भाव सभ मे हमरा द्वारा चिन्तन करबाक योग्य छी।।१७।।

यौ जनार्दन! अपन योगशक्ति कँ आओर विभूति कँ तइयो विस्तारपूर्वक कहू , कियैक तऽ अहाँक अमृतमय वचन सभ कँ सुनैत हमरा तृप्ति नहिं होइत अछि अर्थात् आओर सुनबाक उत्कंठा बनले रहैत अछि।।१८।।

श्रीभगवान बजलाह–

हौ कुरुश्रेष्ठ! आब हमर जे दिव्य विभूति सभ अछि ओकरा तोरा लेल प्रधानता सँ कहबह; कियैक तऽ हमर विस्तारक अन्त नहिं अछि।।१६।।

हौ अर्जुन! हम सभ भूतसभक ह्रदय मे स्थित सभक आत्मा छी आ सभ भूतसभक आदि, मध्य आओर अन्त सेहो हमहिं छी।।२०।।

हम अदितिक बारह पुत्र मे विष्णु आ ज्योति सभ मे किरणबला सूर्य छी आओर उनचास वायुदेवता सभक तेज आ नक्षत्र सभक अधिपति चन्द्रमा छी।।२१।।

हम वेदसभ मे सामवेद छी, देवसभ मे इन्द्र छी, इन्द्रिय सभ मे मन छी आ सभ भूत प्राणी सभ मे चेतना अर्थात् जीवनशक्ति छी।।२२।।

हम एगारह रुद्र मे शंकर छी आ यक्ष आओर राक्षस सभ मे धनक स्वामी कुबेर छी। हम आठ वसु मे अग्नि छी आओर शिखरबला पर्वत सभ मे सुमेरु पर्वत छी।।२३।।

पुरोहित सभ मे मुखिया बृहस्पति हमरा बुझऽ। हौ पार्थ! हम सेनापति सभ मे स्कन्द आ जलाशय सभ मे समुद्र छी।।२४।।

हम महर्षि सभ मे भृगु आ शब्द सभ मे एक अक्षर अर्थात् ओंकार छी। सभ प्रकारक यज्ञ सभ मे जपयज्ञ आओर स्थिर रहएबला सभ मे हिमालय पहाड़ छी।।२५।।

हम वृक्ष सभ मे पीपरक वृक्ष, देवर्षि सभ मे नारद मुनि, गन्धर्व सभ मे चित्ररथ आ सिद्ध सभ मे कपिल मुनि छी।।२६।।

घोड़ा सभ मे अमृतक संग उत्पन्न होमऽबला उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा, श्रेष्ठ हाथी सभ मे ऐरावत नामक हाथी आ मनुष्य सभ मे राजा हमरा बुझऽ।।२७।।

हम शस्त्र सभ मे वज्र आओर गाय सभ मे कामधेनु छी। शास्त्रोक्त रीति सँ सन्तानक उत्पत्तिक हेतु कामदेव छी आओर सर्प सभ मे सर्पराज वासुकि छी।।२८।।

हम नाग सभ मे शेषनाग आओर जलचर सभक अधिपति वरुण देवता छी आ पितर सभ मे अर्यमा नामक पितर आओर शासन करएबला सभ मे यमराज छी।।२६।।

हम दैत्य सभ मे प्रह्लाद आ गणना करएबला सभ मे समय *(क्षण, घड़ी, दिन, पक्ष, मास आदि मे जे अछि)* छी आओर पशु सभ मे मृगराज सिंह आ पक्षी सभ मे हम गरुड़ छी।।३०।।

हम पवित्र करएबला सभ मे वायु छी आ शस्त्रधारी सभ मे श्रीराम छी आओर माँछ सभ मे ग्राह आ नदी सभ मे गंगाजी छी।।३१।।

हौ अर्जुन! सृष्टिसभक आदि आ अन्त आओर मध्य सेहो हमहिं छी। हम विद्या सभ मे अध्यात्मविद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या आ परस्पर विवाद करएबला सभक तत्त्व–निर्णय कँ लेल कएल जाइबला वाद छी।।३२।।

हम अक्षर सभ मे अकार छी आ समास सभ मे द्वन्द्व नामक समास छी। अक्षयकाल अर्थात् कालहुँ कँ महाकाल आओर सभ दिश मुँहबला, विराट्स्वरूप, सभ कँ धारण–पोषण करएबला सेहो हमहिं छी।।३३।।

हम सभक नाश करएबला मृत्यु आओर उत्पन्न होमऽबलाक उत्पत्तिक हेतु छी आओर स्त्रीसभ मे *(सात देवता सभक स्त्रीगण आओर स्त्रीवाचक नामबला गुण)* कीर्ति, श्री,, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति आओर क्षमा छी।।३४।।

आओर गायन करए योग्य श्रुतिसभ मे हम बृहत्साम आ छन्द सभ मे गायत्री छन्द छी आओर महीना सभ मे अगहन आ ऋतु सभ मे वसन्त हम छी।।३५।।

हम छल करएबला सभ मे जुआ आ प्रभावशाली पुरुषसभक प्रभाव छी। हम जीतएबला सभक विजय छी, निश्चय करएबलासभक निश्चय छी आ सात्विक पुरुषसभक सात्विक भाव छी।।३६।।

(यादव सभक भीतर) वृष्णिवंशी सभ मे वासुदेव अर्थात् हम स्वयं तोहर मित्र, पांडव सभ मे धनंजय अर्थात् तूँ, मुनिसभ मे वेदव्यास आओर कविसभ मे शुक्राचार्य कवि हमहिं छी।।३७।।

हम दमन करएबला सभक दण्ड अर्थात् दमन करक शक्ति छी, जीतक इच्छाबलासभक नीति छी, गुप्त रखए योग्य भावसभक रक्षक मौन छी आओर ज्ञानवानसभक तत्त्वज्ञान हमहिं छी।।३८।।

आओर हौ अर्जुन! जे सभ भूतसभक उत्पत्तिक कारण अछि, ओहो हमहिं छी; कियैक तऽ एहन चर आ अचर कोनहुँ भूत नहिं अछि, जे हमरा सँ रहित हुए।।३६।।

हौ परंतप! हमर दिव्य विभूतिसभक अन्त नहिं अछि, हम अपन विभूतिसभक ई विस्तार तँ तोरा एकदेश सँ अर्थात् संक्षेप सँ कहल अछि।।४०।।

जे–जे एहन विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त आ शक्तियुक्त वस्तु अछि, ओहि–ओहि कँ तूँ हमर तेजक अंशकहिं अभिव्यक्ति बुझऽ।।४१।।

अथवा हौ अर्जुन! एहि बहुत जनला सँ तोहर की प्रयोजन छऽ। हम एहि सम्पूर्ण जगत कँ अपन योगशक्तिक एक अंशमात्र सँ धारण कएकऽ स्थित छी।।४२।।

एना भगवान द्वारा गायल उपनिषद, ब्रह्मविद्या, योगशास्त्र मे, श्रीकृष्ण आ अर्जुनक बीच भेल संवाद ***विभूतियोग*** *नामक* ***दशम*** *अध्याय समाप्त भेल।*

एगारहम अध्याय : विश्वरूपदर्शनयोग

अर्जुन बजलाह़–

हमरा पर अनुग्रह करए लेल अहाँ जे परम गोपनीय अध्यात्मविषयक वचन अर्थात् उपदेश कहलहुँ, ओहि सँ हमर अज्ञान नष्ट भए गेल अछि।।१।।

कियैक तऽ यौ कमलनेत्र! हम अहाँ सँ भूतसभक उत्पत्ति आ प्रलय विस्तारपूर्वक सुनलहुँ अछि आओर अहाँक अविनाशी महिमा सेहो सुनलहुँ अछि।। २।।

यौ परमेश्वर! अहाँ अपना कँ जेना कहैत छी, ई ठीक ओहने अछि; परन्तु यौ पुरुषोत्तम! अहाँक ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य आओर तेज सँ युक्त ऐश्वर–रूप कँ हम प्रत्यक्ष देखऽ चाहैत छी ।। ३।।

यौ प्रभु *(उत्पत्ति, स्थिति आ प्रलय आओर अन्तर्यामीरूप सँ शासन करएबला)*! यदि हमरा द्वारा अहाँक ओ रूप देखल गेनाइ संभव अछि–एहन अहाँ मानैत होइ, तँ यौ योगेश्वर! ओहि अविनाशी स्वरूप कँ हमरा दर्शन कराओल जाए।। ४।।

श्रीभगवान बजलाह़–

हौ पार्थ! आब तूँ हमर सैकड़ों–हजारों नाना प्रकारक आ नाना वर्ण आओर नाना आकृतिबला अलौकिक रूप सभ कँ देखऽ।।५।।

हौ भरतवंशी अर्जुन! तूँ हमरा मे अदिति सभ कँ *(अदिति कँ बारह पुत्र सभ कँ), (आठ)* वसु सभ कँ, *(एकादश)* रुद्र सभ कँ, दूनू अश्विनीकुमार कँ आओर *(उन्चास)* मरुद्गण सभ कँ देखऽ आ आओरो बहुत रास पहिले नहिं देखल अर्थात् आश्चर्यमय रूप सभ कँ देखऽ।।६।।

हौ निद्रा कँ जीतनिहार *(गुडाकेश)* ! आब एहि हमर शरीर मे एक ठाम स्थित चराचर सहित सम्पूर्ण जगत कँ देखऽ आ आओरो जे किछु देखए चाहैत छऽ, सेहाँ देखऽ ।।७।।

परन्तु हमरा तूँ अपन प्राकृत आँखि सभ सँ देखए मे निःसंदेह समर्थ नहिं छऽ, तँ हम तोरा दिव्य अर्थात् अलौकिक आँखि दैत छियऽ; जाहि सँ तूँ हमर ईश्वरीय योगशक्ति कँ देखऽ।।८।।

संजय बजलाह़–

यौ राजन्! महायोगेश्वर आओर सभ पाप कँ नाश करएबला भगवान एहि प्रकार कहि ओकर बाद अर्जुन कँ परम ऐश्वर्ययुक्त दिव्यस्वरूप देखौलन्हि।।६।।

अनेक मुँह आ आँखि सभ सँ युक्त, अनेक अद्भुत दर्शनबला, बहुत रास दिव्य भूषण सभ सँ युक्त, आओर बहुत रास दिव्य शस्त्र सभ कँ हाथ मे उठौने दिव्य माला आ वस्त्र सभ कँ धारण केने आओर दिव्य गन्ध कँ पूरा शरीर मे लेप केने, सभ प्रकारक आश्चर्य सभ सँ युक्त, सीमारहित आओर सभ दिश मुँह केने विराट्स्वरूप परमदेव परमेश्वर कँ अर्जुन देखलन्हि।।१०–११।।

आकाश में हजारों सूर्य कँ एक संग उदय भेला सँ उत्पन्न जे प्रकाश हो, ओहो ओहि विश्वरूप परमात्माक प्रकाशक समान कदाचित नहिं हो।।१२।।

पाण्डुपुत्र अर्जुन ओहि समय अनेक प्रकार सँ विभक्त अर्थात् टुकड़ा–टुकड़ा सम्पूर्ण जगत कँ देवहुँ कँ देव श्रीकृष्ण भगवानक ओहि शरीर मे एक ठाम स्थित देखलन्हि।।१३।।

एकर बाद ओ आश्चर्य सँ चकित आओर पुलकित शरीर अर्जुन प्रकाशमय विश्वरूप परमात्मा कैँ श्रद्धा–भक्ति सहित माथ सँ प्रणाम करैत हाथ जोड़ि बजलाह़–।।१४।।

अर्जुन बजलाह़–

यौ देव! हम अहाँक शरीर मे सम्पूर्ण देवता सभ कैँ आओर अनेक भूत सभक समुदाय सभ कैँ, कमलक आसन पर विराजित ब्रह्मा कैँ, महादेव कैँ आओर सम्पूर्ण ऋषि सभ कैँ आओर दिव्य सर्प सभ कैँ देखैत छी।।१५।।

यौ सम्पूर्ण विश्वक स्वामी! अहाँक अनेक बाँहि, पेट, मुँह आ नेत्र सभ सँ युक्त आओर सभ दिश अनन्तरूपबला देखैत छी। यौ विश्वरूप्! हम अहाँक ने अन्त देखैत छी, ने मध्य कैँ आ नहिए आदि कैँ।।१६।।

अहाँ के हम मुकुटयुक्त, गदायुक्त आओर चक्रयुक्त आ सभ दिश सँ प्रकाशमान तेजक पुंज, प्रज्वलित अग्नि आ सूर्यक समान ज्योतियुक्त, कठिनता सँ देखए जाए मे समर्थ आ सभ दिश सँ अप्रमेयस्वरूप देखैत छी।।१७।।

अहीं जानए योग्य परम अक्षर अर्थात् परब्रह्म परमात्मा छी, अहीं ओहि जगत कैँ परम आश्रय छी, अहीं अनादि धर्मक रक्षक छी आओर अहीं अविनाशी सनातन पुरुष छी–एहन हमर मत अछि ।।१८।।

अहाँ कैँ आदि, अन्त आ मध्य सँ रहित, अनन्त सामर्थ्य सँ युक्त, अनन्त भुजाबला, चन्द्र–सूर्यरूप आँखिबला, प्रज्वलित अग्निरूप मुँहबला आओर अपन तेज सँ एहि जगत कैँ संतप्त करैत देखैत छी।१९।।

यौ महात्मा! ई स्वर्ग आ पृथ्वीक बीचक सम्पूर्ण आकाश आ सभ दिशा एक अहीं सँ परिपूर्ण अछि आओर अहाँक एहि अलौकिक आ भयंकर रूप कैँ देखिकए तीनों लोक अति व्यथा कैँ प्राप्त भए रहल छथि।।२०।।

वैह देवता सभक समूह अहाँ मे प्रवेश करैत छथि आओर किछु भयभीत भएकऽ हाथ जोड़ैत अहाँक नाम आ गुण सभक उच्चारण करैत छथि आओर महर्षि आ सिद्ध सभक समुदाय 'कल्याण हो' एहेन कहि कए उत्तम–उत्तम स्तोत्र सभ द्वारा अहाँक स्तुति करैत छथि।।२१।।

जे एगारह रूद्र आ बारह आदित्य आओर आठ बसु, साध्यगण, विश्वेदेव, अश्वनीकुमार आओर पितर सभक समुदाय आओर गन्धर्व, यक्ष, राक्षस आओर सिद्ध सभक समुदाय छथि–ओ सभहिं विस्मित भए अहाँ कैँ देखैत छथि।।२२।।

यौ महाबाहो! अहाँक बहुत मुँह आओर नेत्र सभबला, बहुत हाथ, जाँघ आओर पैरबला, बहुत पेटबला आओर बहुत रास दाढ़क कारण अत्यन्त विकराल महान रूप कैँ देखिकए सभ लोक व्याकुल भए रहल छथि आओर हमहुँ व्याकुल भए रहल छी।।२३।।

कियैक तऽ यौ विष्णु! आकाश कैँ स्पर्श करएबला, देदीप्यमान, अनेक वर्ण सभ सँ युक्त आओर फैलाएल मुँह आ प्रकाशमान विशाल नेत्र सभ सँ युक्त अहाँ कैँ देखि कए भयभीत अन्तःकरणबला हम धैर्य आ शान्ति पहिं पबैत छी।।२४।।

दाढ़ सभक कारण विकराल आओर प्रलयकालक आगि कैँ समान प्रज्वलित अहाँक मुँह सभ कैँ देखि हम दिशा सभ कैँ नहिं जनैत छी। तैँ यौ देवेश! यौ जगन्निवास! अहाँ प्रसन्न होइ।।२५।।

ओ धृतराष्ट्र सभक पुत्र राजा सभक समुदाय संगे अहाँ मे प्रवेश कए रहल छथि आ भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य आ ओ सूतपुत्र *(कर्ण)* आओर हमरहुँ पक्ष कँ प्रधान योद्धा सभक संग सभ–कँ–सभ अहाँ कँ कल्ला सभक कारण विकराल भयानक मुँह सभ मे बड्ड वेग सँ दौड़ैत प्रवेश कए रहल छथि आ कइएक चूर्ण भेल माथ सभ संग अहाँक दाँत सभक बीच मे लागल देखाइ पड़ैत छथि।।२६–२७।।

जेना नदी सभक बहुत रास जलक प्रवाह स्वाभाविकहिं समुद्रकहिं सम्मुख दौड़ैत अछि अर्थात् समुद्र मे प्रवेश करैत अछि, ओहिना ओ नरलोकक वीर अहाँक प्रज्वलित मुँह सभ मे प्रवेश कए रहल छथि।।२८।।

जेना पतंग मोहवश नष्ट होमक लेल प्रज्वलित आगि मे अति वेग सँ दौड़ैत प्रवेश करैत अछि, ओहिना ई सभ लोक सेहो अपन नाशक लेल अहाँक मुँह सभ मे अति वेग सँ दौड़ैत प्रवेश कए रहल छथि।।२९।।

अहाँ ओहि सम्पूर्ण लोक सभ कँ प्रज्वलित मुँह सभ द्वारा ग्रास करैत सभ दिश बेर–बेर चाटि रहल छी, यौ विष्णु! अहाँक उग्र प्रकाश सम्पूर्ण जगत कँ तेज कँ द्वारा परिपूर्ण कए तपा रहल अछि।।३०।।

हमरा बताओल जाए कि अहाँ उग्ररूपबला के थिकहुँ? यौ देव सभ मे श्रेष्ठ! अहाँ कँ नमस्कार हो। अहाँ प्रसन्न होइ। आदिपुरुष अहाँ कँ हम विशेषरूप सँ जानए चाहैत छी, कियैक तऽ अहाँक प्रवृत्ति कँ नहिं जनैत छी।।३१।।

श्रीभगवान बजलाह–

हम लोक सभ *(आकाश, पृथ्वी, पाताल)* कँ नाश करएबला प्रवृद्ध महाकाल छी। एहि समय एहि व्यक्ति सभ कँ नष्ट करए लेल प्रवृत्त भेलहुँ अछि। तेँ जे प्रतिपक्षी सभक सेना मे स्थित योद्वा सभ छथि ओ सभ तोरो बिना सेहो नहिं रहथुन्ह अर्थात् तोहर युद्ध नहिंयो कयला पर सेहो हिनका सभक नाश भए जेतैन्हि।।३२।।

तेँ तूँ उठऽ! यश प्राप्त करऽ आ शत्रु सभ कँ जीति कए धन–धान्य सँ सम्पन्न राज्य कँ भोगऽ। ई सभ शूरवीर पहिनहिँ सँ हमरा द्वारा मारल गेल छथि। हौ सव्यसाची *(वामा हाथ सँ सेहो वाण चलेबाक अभ्यस्त)*! तूँ तऽ केवल निमित्तमात्र बनि जाह।३३।।

द्रोणाचार्य आ भीष्मपितामह आओर जयद्रथ आ कर्ण आओरहुँ बहुत रास हमरा द्वारा मारल गेल शूरवीर योद्धा सभ कँ तूँ मारऽ। भय जुनि करऽ। निःसंदेह तूँ युद्व मे वैरी सभ कँ जीतबह। तेँ युद्ध करऽ।।३४।।

संजय बजलाह–

भगवान केशवक एहन वचन कँ सुनि मुकुटधारी अर्जुन हाथ जोड़ि थरथराइत नमस्कार कएकऽ, तैयो अत्यन्त भयभीत भएकऽ भगवान श्रीकृष्णक प्रति गद्गद् वाणी सँ बजलाह–।।३५।।

अर्जुन बजलाह–

यौ अन्तर्यामी! ई योग्यहिं अछि कि अहाँक नाम, गुण आ प्रभावक कीर्तन सँ जगत अति हर्षित भए रहल अछि आ अनुराग कँ सेहो प्राप्त भए रहल अछि आओर भयभीत राक्षस लोकनि सभ दिशा मे भागि रहल छथि आ सभ सिद्वगणसभक समुदाय नमस्कार कए रहल छथि।।३६।।

यौ महात्मा! ब्रह्महुँ कैँ आदिकर्ता आ सभ सँ पैघ अहाँक लेल ओ केना नमस्कार नहिं करथि, कियैक तऽ यौ अनन्त! यौ जगन्निवास! जे सत् आ असत् आ ओहू सँ पर अक्षर अर्थात् सच्चिदानन्दघन ब्रह्म छथि, ओ अहीं थिकहुँ।।३७।।

अहाँ आदिदेव आ सनातन पुरुष छी, अहाँ एहि जगत कैँ परम आश्रय आ जननिहार आओर जानए योग्य आओर परमधाम छी। यौ अनन्तरूप! अहाँ सँ ई सभ जगत व्याप्त अर्थात् परिपूर्ण अछि।।३८।।

अहाँ वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, प्रजाक स्वामी ब्रह्मा आ ब्रह्माक सेहो पिता थिकहुँ। अहाँक लेल हजारों बेर नमस्कार! नमस्कार हुए! अहाँक लेल फेर सँ बेर–बेर नमस्कार! नमस्कार!!।।३९।।

यौ अनन्त सामर्थ्यबला! अहाँक हेतु आगाँ सँ आ पाछाँ सँ सेहो नमस्कार हो! कियैकऽ तऽ अनन्त पराक्रमशाली अहाँ समस्त संसार कैँ व्याप्त केने छी, जाहि सँ अहीं सर्वरूप थिकहुँ।। ४०।।

अहाँक एहि प्रभाव कैँ नहिं जनैत, 'अहाँ हमर मित्र छी' एहन मानिकए प्रेम सँ अथवा प्रमाद सँ सेहो हम 'यौ कृष्ण!', 'यौ यादव!', 'यौ मित्र!', एहि प्रकार जे किछु बिना सोचि–बुझि हठात् कहलहुँ आओर यौ अच्युत! अहाँ जे हमरा द्वारा विनोदक लेल विहार, शय्या, आसन आओर भोजन आदि मे असगरे मे अथवा ओहि मित्र सभक समक्ष सेहो अपमानित कएल गेल छी–ओ सभ अपराध अप्रमेयस्वरूप अर्थात् अचिन्त्य प्रभावबला अहाँ सँ हम क्षमा करबैत छी।।४१–४२।।

अहाँ एहि चराचर जगतक पिता आ सभ सँ पैघ गुरु आ अति पूजनीय छी, यौ अनुपम प्रभावबला! तीनों लोक मे अहाँक समानहुँ दोसर कियो नहिं अछि फेर अधिक केना भए सकैत अछि।।४३।।

तैँ यौ प्रभु! हम शरीर कैँ नीकजकाँ अहाँक पैर सभ मे निवेदित कए, प्रणाम कए, स्तुति करए योग्य अहाँ–ईश्वर– कैँ प्रसन्न होमऽ लेल प्रार्थना करैत छी। यौ देव! पिता जेना पुत्रक, मित्र जेना मित्रक और पति जेना प्रियतमा पत्नीक अपराध सहन करैत छथि–ओहिना अहूँ हमर अपराध कैँ सहन करए योग्य थिकहुँ ।।४४।।

हम पहिले नहिं देखल अहाँक एहि आश्चर्यमय रूप कैँ देखिकए हर्षित भए रहल छी आ हमर मन भय सँ अति व्याकुल सेहो भए रहल अछि, तैँ अहाँ ओहि अपन चतुर्भुज विष्णुरूपहिं कैँ हमरा देखाबी। यौ देवेश! यौ जगन्निवास! प्रसन्न होइ।।४५।।

हम अहाँ कैँ ओहिना मुकुट धारण केने आ गदा आओर चक्र हाथ मे लेने देखए चाहैत छी, तैँ यौ सहस्रबाहो! अहाँ ओहि चतुर्भुजरूप सँ प्रकट होइ।।४६।।

श्रीभगवान बजलाह–

हौ अर्जुन! अनुग्रहपूर्वक हम अपन योगशक्तिक प्रभाव सँ ई अपन परम तेजोमय सभक आदि आ सीमा सँ रहित विराट्रूप तोरा देखावल अछि, जकरा तोरा अलावे दोसर कियो पहिले नहिं देखने छलथि।।४७।।

हौ अर्जुन! मनुष्यलोक मे एहि प्रकार विश्वरूपबला हम ने वेद आ यज्ञ सभक अध्ययन सँ, ने दान सँ, नहिंए क्रिया सभ सँ आ नहिंए उग्र तपस्यासभहुँ सँ तोहर अतिरिक्त दोसर कैँ द्वारा देखल जा सकैत छी।।४८।।

हमरा एहि प्रकार एहि विकराल रूप कँ देखिकए तोरा व्याकुलता नहिं हेबाक चाही आ मूढ़भाव सेहो नहिं हेबाक चाही। तूँ भयरहित आ प्रीतियुक्त मनबला भए कऽ ओहि हमर शंख–चक्र–गदा–पद्मयुक्त चतुर्भुजरूप कँ फेर देखऽ।।४६।।

संजय बजलाह–

वासुदेव भगवान अर्जुनक प्रति एहि प्रकार कहि कए आ फेर ओहिना अपन चतुर्भुजरूप कँ देखौलन्हि आ फेर महात्मा श्रीकृष्ण सौम्यमूर्ति भएकऽ एहि भयभीत अर्जुन कँ धैर्य दियौलन्हि।।५०।।

अर्जुन बजलाह–

यौ जनार्दन! अहाँक एहि अति शान्त मनुष्यरूप कँ देखि कए आब हम स्थिरचित्त भेलहुँ अछि आ अपन स्वाभाविक स्थिति कँ प्राप्त भय गेलहुँ अछि।।५१।।

श्रीभगवान बजलाह–

हमर जे चतुर्भुजरूप तूँ देखलह अछि, ओ सुदुर्दर्श अछि अर्थात् एकर दर्शन बहुतहिं दुर्लभ अछि। देवता सेहो हमेशा एहि रूपक दर्शन केर आकांक्षा करैत रहैत छथि।।५२।।

जाहि प्रकार तूँ हमरा देखलह अछि–एहि प्रकार चतुर्भुजरूपबला हम ने वेदसभ सँ, ने तप सँ, ने दान सँ आओर नहिंए यज्ञ सँ देखल जा सकैत छी।।५३।।

परन्तु हौ परंतप अर्जुन! अनन्य भक्ति *(एकर भाव अगिला लोक मे विस्तार सँ कहल गेल अछि)* कँ द्वारा एहि प्रकार चतुर्भुजरूपबला हम प्रत्यक्ष देखऽक लेल, तत्त्व सँ जनबाक लेल, आ प्रवेश करक लेल अर्थात् एकीभाव सँ प्राप्त होमक लेल सेहो शक्य छी।।५४।।

हौ अर्जुन! जे पुरुष केवल हमरहिं लेल सम्पूर्ण कर्त्तव्यकर्मसभ कँ करएबला छथि, हमर परायण छथि, आसक्तिरहित छथि आ सम्पूर्ण भूतप्राणीसभ मे वैरभाव सँ रहित छथि *(सर्वत्र भगवद्बुद्धि भऽ गेला सँ ओहि पुरुष कँ अति अपराध करएबला मे सेहो वैरभाव नहिं होइत छैन्हि, तऽ फेर दोसर कँ की कहनाइ)* ओ अनन्यभक्तियुक्त पुरुष हमरहिं प्राप्त होइत छथि।।५५।।

एना भगवान द्वारा गायल उपनिषद, ब्रह्मविद्या, योगशास्त्र मे, श्रीकृष्ण आ अर्जुनक बीच भेल संवाद **विश्वरूपदर्शनयोग** *नामक* ***एगारहम*** *अध्याय समाप्त भेल।*

बारहम अध्याय : भक्तियोग

अर्जुन बजलाह़–

जे अनन्यप्रेमी भक्तजन पूर्वोक्त प्रकार सँ निरन्तर अहाँक भजन–ध्यान मे लागल रहि कए अहाँ–सगुणरूप परमेश्वर–कँ आ दोसर जे केवल अविनाशी सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्म कँ मात्र अतिश्रेष्ठ भाव सँ भजैत छथि–ओहि दूनू प्रकारक उपासक मे अति उत्तम योगवेत्ता के छथि? ।।।१।।

श्रीभगवान बजलाह़–

हमरा मे मन कँ एकाग्र कएकऽ निरन्तर हमर भजन–ध्यान मे लागल *(अध्याय ११: श्लोक ५५ क जकाँ निरन्तर हमरा मे लागल)* जे भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धा सँ युक्त भएकऽ हमरा–सगुणरूप परमेश्वर–कँ भजैत छथि, ओ हमरा योगीसभ मे अति उत्तम योगी मान्य छथि।। २।।

परन्तु जे पुरुष इन्द्रियसभक समुदाय कँ नीकजकाँ वश मे कएकऽ मन–बुद्धि सँ पर सर्वव्यापी, अकथनीय स्वरूप आओर सदा एकरस रहएबला नित्य, अचल, निराकार, अविनाशी सच्चिदानन्दघन ब्रह्म कँ निरन्तर एकीभाव सँ ध्यान करैत भजैत छथि, ओ सम्पूर्ण भूतसभक हित मे रत आ सभ मे समान भावबला योगी हमरहिं प्राप्त होइत छथि।। ३–४।।

ओहि सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्म मे अनासक्त चित्तबला पुरुषसभक साधन मे परिश्रम विशेष अछि; कियैक तऽ देहाभिमानीसभ कँ द्वारा अव्यक्त विषयक गति दुःखपूर्वक प्राप्त कएल जाइत अछि।।५।।

परन्तु जे हमर परायण रहएबला भक्तजन सम्पूर्ण कर्मसभ कँ हमरा मे अर्पण कएकऽ अनन्य भक्तियोग सँ चिन्तन करैत भजैत छथि *(अध्याय ११: श्लोक १५ एहि श्लोकक विशेषभाव लेल देखू)*।।६।।

हौ अर्जुन! ओहि हमरा मे चित्त लगबएबला प्रेमी भक्तसभ कँ हम जल्दीए मृत्युरूप संसार–समुद्र सँ उद्धार करएबला होइ छी ।।७।।

हमरा मे मन लगाबह आ हमरहिं मे बुद्धि लगाबह, एकर बाद तूँ हमरहिं मे निवास करबह, एहि मे किछुओ संशय नहिं अछि।।८।।

यदि तूँ मन कँ हमरा मे अचल स्थापन करए मे समर्थ नहिं छऽ, तऽ हौ अर्जुन! अभ्यासरूप *(भगवानक नाम आ गुणसभक श्रवण, कीर्तन, मनन आ श्वाँसक द्वारा जप आओर भगवत्प्राप्तिविषयक शास्त्रसभक पठन–पाठन इत्यादिक चेष्टासभ भगवत्प्राप्तिक लेल बारम्बार केनाइ 'अभ्यास' थिक)* योग कँ द्वारा हमरा प्राप्त होएबाक लेल इच्छा करऽ।।९।।

यदि तूँ उपर्युक्त अभ्यासहुँ मे सेहो असमर्थ छऽ,तऽ केवल हमरे लेल कार्य करबाक परायण*(स्वार्थ कँ त्यागि आ परमेश्वरहिंटा कँ परम आश्रय आ परम गति बुझि कएऽ, निष्काम प्रेमभाव सँ सती–शिरोमणि, पतिव्रता स्त्री जकाँ मन, वाणी आ शरीर द्वारा परमेश्वरहिं कँ लेल यज्ञ, दान आ तप आदि सम्पूर्ण कर्तव्यसभ कँ करब)* भए जाह। एहि प्रकार हमरा निमित्त कर्मसभ कँ करितहुँ हमर प्राप्तिरूप सिद्धिए कँ प्राप्त हेबह।।१०।।

यदि हमर प्राप्तिरूप योग कँ आश्रित भएकऽ उपर्युक्त साधन कँ करए मे सेहो तूँ असमर्थ छऽ, तऽ मन–बुद्धि आदि पर विजय प्राप्त करएबला भऽ कऽ सभ कर्मफल कँ त्याग *(अध्याय ९: श्लोक २७ मे एकर विस्तार देखू)* करऽ।।११।।

मर्म कँ नहिं जानि कए कएल अभ्यास सँ ज्ञान श्रेष्ठ अछि;ज्ञान सँ–हमर–परमेश्वरक स्वरूप कँ ध्यान श्रेष्ठ अछि आ ध्यानहुँ सँ सभ कर्मक फलक त्याग श्रेष्ठ अछि *(केवल भगवान क लेल कर्म करएबला पुरुषक भगवान मे प्रेम आ श्रद्धा आओर भगवानक चिन्तन सेहो बनल रहैत अछि, तैँ ध्यान सँ 'कर्मफलक त्याग' श्रेष्ठ कहल गेल अछि)* कियैक तऽ त्याग सँ तत्कालहिं परम शान्ति होइत छैक ।।१२।।

जे पुरुष सभ भूतमे द्वेषभाव सँ रहित, स्वार्थरहित, सभक प्रेमी आ हेतुरहित दयालु छथि आ ममता सँ रहित, अहंकार सँ रहित, सुख–दुःखसभक प्राप्ति मे सम आ क्षमावान छथि अर्थात् अपराध करएबला कँ सेहो अभय देइबला छथि; आओर जे योगी निरन्तर सन्तुष्ट छथि,मन–इन्द्रियसभ सहित शरीर कँ वश मे केने छथि आ हमरा मे दृढ़ निश्चयबला छथि–ओ हमरा मे अर्पण कएल मन–बुद्धिबला भक्त हमरा प्रिय छथि।।१३–१४।।

जिनका सँ कोनो जीव उद्वेग कँ प्राप्त नहिं होइत छथि आ जे स्वयं सेहो कोनहुँ जीव सँ उद्वेग कँ प्राप्त नहिं होइत छथि; आ जे हर्ष, अमर्ष *(दोसरक उन्नति कँ देखि कए संताप भेनाइ)* भय आ उद्वेग आदि सँ रहित छथि–ओ भक्त हमरा प्रिय छथि।।१५।।

जे पुरुष आकांक्षा सँ रहित, बाहर–भीतर सँ शुद्ध *(अध्याय १३ः श्लोक ७ क टिप्पणी मे एकर विस्तार देखू),* चतुर, पक्षपात सँ रहित, आ दुःखसभ सँ छूटल छथि– ओ सभ आरम्भ क त्यागी हमर भक्त हमरा प्रिय छथि।।१६।।

जे ने कहियो हर्षित होइत छथि, ने द्वेष करैत छथि, ने शोक करैत छथि, ने कामना करैत छथि, आओर जे शुभ आ अशुभसभ कर्मसभक त्यागी छथि–ओ भक्तियुक्त पुरुष हमरा प्रिय छथि।।१७।।

जे शत्रु–मित्र मे आ मान–अपमान मे सम छथि आओर सरदी, गरमी आ सुख–दुःख आदि द्वन्द्व मे सम छथि आ आसक्ति सँ रहित छथि।।१८।।

जे निन्दा–स्तुति कँ समान बुझएबला, मननशील आओर जाहि कोनो प्रकार सँ सेहो शरीरक निर्वाह होइ मे सदैव सन्तुष्ट छथि आ रहएक स्थान मे ममता आओर आसक्ति सँ रहित छथि–ओ स्थिरबुद्धि आ भक्तिमान पुरुष हमरा प्रिय छथि।।१९।।

परन्तु जे श्रद्धायुक्त *(वेद, शास्त्र, महात्मा आ गुरुजनसभक आ परमेश्वरक वचनसभ मे प्रत्यक्षक समान विश्वासक नाम 'श्रद्धा' अछि)* पुरुष हमर परायण भएकऽ एहि ऊपर कहल धर्ममय अमृत कँ निष्काम प्रेमभाव सँ सेवन करैत छथि, ओ भक्त हमरा अतिशय प्रिय छथि।।२०।।

एना भगवान द्वारा गायल उपनिषद, ब्रह्मविद्या, योगशास्त्र मे, श्रीकृष्ण आ अर्जुनक बीच भेल संवाद ***भक्तियोग*** *नामक* ***बारहम*** *अध्याय समाप्त भेल।*

तेरहम अध्याय : क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग

श्रीभगवान बजलाह़–

हौ अर्जुन! ई शरीर क्षेत्र *(जेना खेत मे बाउ कएल बीया सभक हुनक अनुरूप फल समय पर प्रकट होइत अछि, तहिना एहि मे बाउ कएल कर्मसभक संस्काररूप बीयासभक फल समयपर प्रकट होइत अछिए तेँ)* एहि नाम सँ कहल जाइत अछि आओर एकरा जे जनैत छथि, हुनका 'क्षेत्रज्ञ' एहि नाम सँ हुनक तत्त्व कैँ जनएबला ज्ञानीजन कहैत छथि।१।।

हौ अर्जुन! तूँ सभ क्षेत्रसभ मे क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्मा सेहो हमरहिं जानऽ *(अध्याय १५ः श्लोक ७ आ ओकर टिप्पणी देखू)* आओर क्षेत्र–क्षेत्रज्ञ कैँ अर्थात् विकार सहित प्रकृति कैँ आ पुरुष कैँ जे तत्त्व सँ जनैत छथि *(एहि अध्यायक श्लोक २३ आ ओकर टिप्पणी देखू)*, वैह ज्ञान अछि–एहन हमर मत अछि।।२।।

ओ क्षेत्र जे आओर जेहन अछि आ जाहि विकारसभबला अछि, आओर जाहि कारण सँ जे भेल अछि आ क्षेत्रज्ञ सेहो जे आओर जाहि प्रभावबला छथि–ओ सभ संक्षेप मे हमरा सँ सुनऽ।।३।।

ई क्षेत्र आ क्षेत्रज्ञक तत्त्व ऋषिसभ द्वारा बहुत प्रकार सँ कहल गेल अछि आओर विविध वेदमन्त्रसभ द्वारा सेहो विभागपूर्वक कहल गेल अछि आओर नीकजकाँ निश्चय कएल युक्तियुक्त ब्रह्मसूत्रक पदसभ द्वारा सेहो कहल गेल अछि।।४।।

पांच महाभूत, अहंकार, बुद्धि आ मूल प्रकृति सेहो आओर दश इन्द्रियसभ, एक मन आ पांच इन्द्रियसभक विषय अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस आ गन्ध–।।५।।

आओर इच्छा, द्वेष, सुख–दुःख, स्थूल देहक पिण्ड, चेतना *(शरीर आ अन्तःकरणक एक प्रकारक चेतन शक्ति)* आओर धृति *(अध्याय १८ः श्लोक ३४ सँ ३५ देखू)*–एहि प्रकार विकारसभ *(पांचम श्लोक मे कहल तऽ क्षेत्रक स्वरूप बुझक चाही आ एहि श्लोक मे कहल कैँ क्षेत्रक विकार बुझक चाही)* क सहित इ क्षेत्र संक्षेप मे कहल गेल अछि ।।६।।

श्रेष्ठताक अभिमानक अभाव, दम्भाचरणक अभाव, कोनहुँ प्राणी कैँ कोनो प्रकारे नहिं सतेनाइ, क्षमाभाव, मन–वाणी आदिक सरलता, श्रद्धा आ भक्तिपूर्वक गुरुक सेवा, बाहर आ भीतरक शुद्धि *(सत्यतापूर्वक शुद्ध व्यवहार सँ द्रव्यक आ ओकर अन्न सँ आहारक आओर यथायोग्य व्यवहार सँ शरीरक शुद्धि कैँ बाहरक शुद्धि कहल जाइत अछि आ राग–द्वेष आओर कपट आदि विकारसभक नाश भएऽ कऽ अन्तःकरण कैँ स्वच्छ भऽ गेनाइ भीतरक शुद्धि कहल जाइत अछि)* अन्तःकरणक स्थिरता आ मन–इन्द्रियसभ सहित शरीरक निग्रह।।७।।

एहि लोक मे आ परलोक मे सभ भोग सभ मे आसक्तिक अभाव आओर अहंकारक सेहो अभाव, जन्म, मृत्यु, बुढ़ौती आ रोग आदि मे दुःख आ दोषसभक बेर–बेर विचार केनाइ।।८।।

बेटा, स्त्री, घर आ धन आदि मे आसक्तिक अभाव, ममता कैँ नहि भेनाइ आ प्रिय आ अप्रिय कैँ प्राप्ति मे हमेशा चित्तक सम रहनाइ ।।९।।

हमरा–परमेश्वर–मे अनन्य योग कैँ द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति *(केवल एक सर्वशक्तिमान परमेश्वरहिं कैँ अपन स्वामी मानैत स्वार्थ आ अभिमानक त्याग कए, श्रद्धा आ भावक सहित परमप्रेम सँ भगवानक निरन्तर चिन्तन करब)* आओर एकान्त आ शुद्ध देश मे रहएक स्वभाव आ विषयासक्त मनुष्यसभक समुदाय मे प्रेम कैँ नहिं भेनाइ ।।१०।।

अध्यात्मज्ञान मे *(जाहि ज्ञानक द्वारा आत्मवस्तु आ अनात्मवस्तु जानल जाए),* नित्यस्थिति आ तत्त्वज्ञानक अर्थरूप परमात्महिं टा कैँ देखनाइ –ई सभ ज्ञान *(एहि अध्यायक श्लोक ७ सँ एतऽ धरि जे साधन कहल गेल अछि, तत्त्वज्ञानक प्राप्ति मे हेतु भेला सँ ओ सभ 'ज्ञान' नाम सँ कहल गेल अछि)* आ एहि सँ जे विपरीत अछि ओ अज्ञान *(ऊपर कहल ज्ञानक साधन सभ सँ विपरीत जे मान, दम्भ, हिंसा आदि अछि, ओ अज्ञानक वृद्धि मे हेतु भेला सँ 'अज्ञान' नाम सँ कहल गेल अछि)*–एहन कहल गेल अछि।।११।।

जे जानए योग्य अछि आ जकरा जानि कए मनुष्य परमानन्द कैँ प्राप्त होइत अछि, ओकरा नीकजकाँ कहबऽ। ओ अनादि परमब्रह्म ने सत् कहल जाइत छथि आ नहिंए असत्।।१२।।

ओ सभ दिश हाथ–पैरबला, सभ दिश आँखि, माथ आ मुँहबला आ सभ दिश कानबला छथि। कियैक तऽ ओ संसार मे सभ कैँ व्याप्त कए स्थित छथि।*(आकाश जेना वायु, अग्नि, जल आ पृथ्वीक कारणरूप भेला सँ उनका व्याप्त कए स्थित अछि, ओहिना परमात्मा सेहो सभक कारणरूप भेला सँ सम्पूर्ण चराचर जगत कैँ व्याप्त कए स्थित छथि।)*।।१३।।

ओ सम्पूर्ण इन्द्रियसभक विषयसभ कैँ जनएबला छथि, परन्तु वास्तव मे सभ इन्द्रियसभ सँ रहित छथि आ आसक्तिरहित भेलहुँ पर सभ कैँ धारण–पोषण करएबला आओर निर्गुण भेलहुँ पर गुणसभ कैँ भोगएबला छथि।।१४।।

ओ चराचर सभ भूतसभक बाहर–भीतर परिपूर्ण छथि आ चर–अचर सेहो वैह छथि। आ सूक्ष्म भेला सँ अविज्ञेय *(जेना सूर्यक किरण मे स्थित भेल जल सूक्ष्म भेला सँ साधारण मनुष्यसभ कैँ जनए मे नहिं अबैत अछि, ओहिना सर्वव्यापी परमात्मा सेहो सूक्ष्म भेला सँ साधारण मनुष्यसभ कैँ जनए मे नहिं अबैत छथि)* छथि आ अति लग *(ओ परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण आ सभक आत्मा भेला सँ अत्यन्त लग छथि)* आओर दूर मे *(श्रद्धारहित, अज्ञानी पुरुषसभ कैँ नहिं जनबाक कारण बहुत दूर छथि)* सेहो वैह स्थित छथि।।१५।।

ओ परमात्मा विभागरहित एक रूप सँ आकाशक समान परिपूर्ण भेलहूँ पर चराचर सभ भूत सभ मे विभक्त सन लगैत छथि *(जेना महा आकाश विभागरहित स्थित भेलहुँ पर घटसभ मे अलग–अलगक जकाँ लगैत अछि, ओहिना परमात्मा सभ भूत सभ मे एकरूप सँ स्थित भेलहुँ पर अलग–अलगक जकाँ लगैत छथि)* आ ओ जानएयोग्य परमात्मा विष्णुरूप सँ भूतसभ कैँ धारण–पोषण करएबला आ रुद्ररूप सँ संहार करएबला आ ब्रह्मारूप सँ सभ कैँ उत्पन्न केनिहार छथि।।१६।।

ओ परबह्म ज्योतिसभक सेहो ज्योति *(अध्याय १५:श्लोक १२ देखू)* एवं माया सँ उत्पन्न अत्यन्त पर कहल जाइत छथि। ओ परमात्मा बोधस्वरूप, जनबाक योग्य आ तत्त्वज्ञान सँ प्राप्त करए योग्य छथि आ सभ कैँ हृदय मे विशेषरूप सँ स्थित छथि।।१७।।

एहि प्रकार क्षेत्र *(श्लोक ५–६ मे विकारसहित क्षेत्रक स्वरूप कहल गेल अछि)* आओर ज्ञान *(श्लोक ७ सँ ११ धरि ज्ञान अर्थात् ज्ञानक साधन कहल गेल अछि)* आ जानए योग्य परमात्माक स्वरूप*(श्लोक १२ सँ १७ धरि ज्ञेयक स्वरूप कहल गेल अछि)* संक्षेप सँ कहल गेल अछि। हमर भक्त एकरा तत्त्व सँ जानि कए हमर स्वरूप कैँ प्राप्त होइत छथि।।१८।।

प्रकृति आ पुरुष–एहि दुनू कैँ तूँ अनादि जानऽ आओर राग–द्वेष आदि विकार सभ कैँ आ त्रिगुणात्मक सम्पूर्ण पदार्थ सभ कैँ सेहो प्रकृतिए सँ उत्पन्न जानऽ।।१९।।

कार्य *(आकाश, वायु, अग्नि, जल आ पृथ्वी आओर शब्द, स्पर्श, रूप, रस आ गन्ध)* आ करण *(बुद्धि, अहंकार आ मन आओर श्रोत, त्वचा, रसना, नेत्र आ घ्राण आओर वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ आ गुदा–ई तेरहो)* कँ उत्पन्न करए मे हेतु प्रकृति कहल जाइत अछि आओर जीवात्मा सुख–दुःखसभक भोक्तापन मे अर्थात् भोगए मे हेतु कहल जाइत अछि।।२०।।

प्रकृति *(अध्याय ७:श्लोक १४ मे कहल गेल भगवानक त्रिगुणात्मक माया)* मे स्थितहिं पुरुष प्रकृति सँ उत्पन्न त्रिगुणात्मक पदार्थसभ कँ भोगैत छथि आ एहि गुणसभक संगहि एहि जीवात्मा कँ नींक–अधलाह योनि मे जन्म लेबाक कारण अछि *(सत्त्वगुणक संग सँ देवयोनि मे आ रजोगुणक संग सँ मनुष्ययोनि मे आओर तमोगुणक संग सँ पशु, पक्षी आदि नीचयोनि मे जन्म होइत अछि)* ।।२१।।
एहि देह मे स्थित ई आत्मा वास्तव मे परमात्माए छथि। वैह साक्षी भेला सँ उपद्रष्टा आ यथार्थ सम्मति देबऽबला भेला सँ अनुमन्ता, सभक धारण–पोषण करएबला भेला सँ भर्ता, जीवरूप सँ भोक्ता, ब्रह्मा आदि कँ सेहो स्वामी भेला सँ महेश्वर आओर शुद्ध सच्चिदानन्दघन भेला सँ परमात्मा–एहन कहल गेल छथि।।२२।।

एहि प्रकार पुरुष कँ आ आन गुणसभक कँ सहित प्रकृति कँ जे मनुष्य तत्त्व सँ जनैत छथि *(दृश्यमात्र सम्पूर्ण जगत मायाक कार्य भेला सँ क्षणभंगुर, नाशवान, जड़ आ अनित्य अछि आओर जीवात्मा नित्य, चेतन, निर्विकार ओ अविनाशी एवं शुद्ध, बोधस्वरूप, सच्चिदानन्दघन परमात्माकहिं सनातन अंश अछि, एहि प्रकार बुझि सम्पूर्ण मायिक पदार्थसभक संग कँ सर्वथा त्याग कए परमपुरुष परमात्माटाऽ मे एकीभाव सँ स्थित रहक नाम हुनका तत्त्व सँ जननाइ अछि)* ओ सभ प्रकार सँ कर्तव्यकर्म करितहुँ फेर नहिं जनमैत छथि।।२३।।

ओहि परमात्मा कँ कतेको मनुष्य तऽ शुद्ध भेल सूक्ष्म बुद्धि सँ ध्यानक *(जकर विवरण अध्याय ६:श्लोक ६ सँ ११ धरि विस्तारपूर्वक कएल गेल अछि)* द्वारा हृदय मे देखैत छथि; अन्य कतेकहुँ ज्ञानयोगक *(जकर विवरण अध्याय २ मे श्लोक ११ सँ ३० धरि विस्तारपूर्वक कएल गेल अछि)* द्वारा आओर दोसर कतेकहुँ कर्मयोगक *(जकर विवरण अध्याय २ मे श्लोक ४० सँ अध्याय समाप्तिपर्यन्त विस्तारपूर्वक कएल गेल अछि)* द्वारा देखैत छथि अर्थात् प्राप्त करैत छथि।।२४।।

परन्तु इनका सँ दोसर अर्थात् जे मन्दबुद्धिबला पुरुष छथि, ओ एहि प्रकार नहिं जनितहुँ दोसर सभ सँ अर्थात् तत्त्व कँ जननिहार पुरुषसभ सँ सुनि कए तदनुसार उपासना करैत छथि आ ओ श्रवणपरायण पुरुष सेहो मृत्युरूप संसार–सागर कँ निःसंदेह हेलि जाइत छथि।।२५।।

हौ अर्जुन! यावत् मात्र जतेकहुँ स्थावर–जंगम प्राणी उत्पन्न होइत छथि, ओहि सभ कँ तूँ क्षेत्र आ क्षेत्रज्ञक संयोगहिं सँ उत्पन्न जानऽ ।।२६।।

जे पुरुष नष्ट होइत सभ चराचर भूतसभ मे परमेश्वर कँ नाशरहित आ समभाव सँ स्थित देखैत छथि, वैह यथार्थ देखैत छथि।।२७।।

कियैक तऽ जे पुरुष सभ मे समभाव सँ स्थित परमेश्वर कँ समान देखैत अपनहिं द्वारा अपना कँ नष्ट नहिं करैत छथि, एहि सँ ओ परमगति कँ प्राप्त होइत छथि।।२८।।

आओर जे पुरुष सम्पूर्ण कर्मसभ कँ सभ प्रकार सँ प्रकृतिहिंक द्वारा कएल जाइत देखैत छथि आओर आत्मा कँ अकर्ता देखैत छथि, वैह यथार्थ देखैत छथि।।२९।।

जाहि क्षण ई पुरुष भूतसभ कँ पृथक्–पृथक भाव कँ एकहिं परमात्मा मे स्थित आ ओहि परमात्मा सँ सम्पूर्ण भूतसभक विस्तार देखैत छथि, ओहि क्षण ओ सच्चिदानन्दघन ब्रह्म कँ प्राप्त भए जाइत छथि।।३०।।

हौ अर्जुन! अनादि भेला सँ आओर निर्गुण भेला सँ ई अविनाशी परमात्मा शरीर मे स्थित भेनहुँ वास्तव मे ने तऽ किछु करैत अछि आ नहिंए लिप्त होइत अछि।।३१।।

जाहि प्रकार सर्वत्र व्याप्त आकाश सूक्ष्म भेलाक कारण लिप्त नहिं होइत अछि, ओहिना देह मे सर्वत्र स्थित आत्मा निर्गुण भेलाक कारण देहक गुणसभ सँ लिप्त नहिं होइत अछि।।३२।।

हौ अर्जुन! जाहि प्रकार एकहिं सूर्य सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड कँ प्रकाशित करैत अछि, ओहि प्रकार एकहिं आत्मा सम्पूर्ण क्षेत्र कँ प्रकाशित करैत अछि।।३३।।

एहि प्रकार क्षेत्र आ क्षेत्रज्ञक भेद कँ *(क्षेत्र कँ जड़, विकारी, क्षणिक आ नाशवान आओर क्षेत्रज्ञ कँ नित्य, चेतन, अविकारी आ अविनाशी जननाइ 'हुनक भेद कँ जानब' अछि)* आओर कार्यसहित प्रकृति सँ मुक्त हेबा कँ जे पुरुष ज्ञान–नेत्रसभ द्वारा तत्त्व सँ जनैत छथि ओ महात्माजन परम ब्रह्म परमात्मा कँ प्राप्त होइत छथि।।३४।।

एना भगवान द्वारा गायल उपनिषद, ब्रह्मविद्या, योगशास्त्र मे, श्रीकृष्ण आ अर्जुनक बीच भेल संवाद **क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग** *नामक **तेरहम** अध्याय समाप्त भेल।*

चौदहम अध्याय : गुणत्रयविभागयोग

श्रीभगवान बजलाह–

ज्ञानसभ मे सेहो अति उत्तम ओहि परमज्ञान कँ हम फेर सँ कहबऽ, जकरा जानि कए सभ मुनिजन एहि संसार सँ मुक्त भएकऽ परमसिद्धि कँ प्राप्त भए गेलाह अछि।।१।।

एहि ज्ञान कँ आश्रय कए कऽ हमर स्वरूप कँ प्राप्त भेल पुरुष सृष्टिक आदि मे फेर उत्पन्न नहिं होइत छथि आओर प्रलयकाल मे सेहो व्याकुल नहिं होइत छथि।।२।।

हौ अर्जुन! हमर महत्–ब्रह्मरूप मूल प्रकृति सम्पूर्ण भूतसभक योनि अछि अर्थात् गर्भाधानक स्थान अछि आ हम ओहि योनि मे चेतनसमुदायरूप गर्भ कँ स्थापना करैत छी। ओहि जड़–चेतनक संयोग सँ सभ भूतसभक उत्पत्ति होइत अछि।।३।।

हौ अर्जुन! नाना प्रकारक सभ योनिसभ मे जतेक मूर्तिसभ अर्थात् शरीरधारी प्राणी उत्पन्न होइत छथि प्रकृति तऽ ओहि सभ कँ धारण करएबाली माता छथि आ हम बीज कँ स्थापन करएबला पिता छी ।।४।।

हौ अर्जुन! सतोगुण, रजोगुण आ तमोगुण–ई प्रकृति सँ उत्पन्न तीनो गुण अविनाशी जीवात्मा कँ शरीर मे बन्हैत छथि।।५।।

हौ निष्पाप! ओहि तीनू गुणसभ मे सतोगुण तऽ निर्मल भेलाक चलते प्रकाश करएबला आओर विकाररहित अछि, ओ सुखक सम्बन्ध सँ आओर ज्ञानक सम्बन्ध सँ अर्थात् अभिमान सँ बन्हैत अछि।।६।।

हौ अर्जुन! रागरूप रजोगुण कामना आओर आसक्ति सँ उत्पन्न जानऽ। ओ एहि जीवात्मा कँ कर्मसभ सँ आ हुनक फलक सम्बन्ध सँ बन्हैत अछि।।७।।

हौ अर्जुन! सभ देहाभिमानीसभ कँ मोहित करएबला तमोगुण के तऽ अज्ञान सँ उत्पन्न जानऽ। ओ एहि जीवात्मा कँ प्रमाद *(इन्द्रियसभ आ अन्तःकरणक व्यर्थ चेष्टा),* आलस्य *(कर्तव्य–कर्म मे अप्रवृत्तिरूप निरुद्यमता)* आओर निद्राक द्वारा बन्हैत अछि।।८।।

हौ अर्जुन! सतोगुण तऽ सुख मे लगबैत अछि आ रजोगुण कर्म मे आओर तमोगुण तऽ ज्ञान कँ झाँपि कए प्रमाद मे सेहो लगबैत अछि ।।९।।

हौ अर्जुन! रजोगुण आ तमोगुण कँ दबाकए सतोगुण, सतोगुण आ तमोगुण कँ दबाकए रजोगुण, ओहिना सतोगुण आ रजोगुण कँ दबाकए तमोगुण होइत अछि अर्थात् बढ़ैत अछि।।१०।।

जाहि समय एहि देह मे आओर अन्तःकरण आ इन्द्रियसभ मे चेतनता आ विवेकशक्ति उत्पन्न होइत अछि, ओहि समय एहन जानक चाही कि सतोगुण बढ़ल अछि।।११।।

हौ अर्जुन! रजोगुण के बढ़ला पर लोभ, प्रवृत्ति, स्वार्थबुद्धि सँ कर्मसभक सकामभाव सँ आरम्भ, अशान्ति आओर विषयभोगसभे लालसा–ई सभ उत्पन्न होइत अछि।।१२।।

हौ अर्जुन! तमोगुण के बढ़ला पर अन्तःकरण आओर इन्द्रियसभ मे अप्रकाश, कर्तव्य–कर्म सभमे अप्रवृत्ति आओर प्रमाद अर्थात् व्यर्थ चेष्टा आ निद्रा आदि अन्तःकरणक मोहिनी वृत्ति–ई सभहिं उत्पन्न होइत अछि।।१३।।

जखन कि ई मनुष्य सतोगुणक वृद्धि मे मृत्यु कँ प्राप्त होइत छथि, तखन तऽ उत्तम कर्म करएबलासभक निर्मल दिव्य स्वर्ग आदि लोक कँ प्राप्त होइत छथि।।१४।।

रजोगुण के बढ़ला पर मृत्यु कँ प्राप्त भएकऽ कर्मसभक आसक्तिबला मनुष्यसभ मे उत्पन्न होइत छथि; आओर तमोगुण के बढ़ला पर मरल मनुष्य कीट, पशु आदि मूढ़ योनि सभ मे उत्पन्न होइत छथि ।।१५।।

श्रेष्ठ कर्मक तऽ सात्विक अर्थात् सुख, ज्ञान आओर वैराग्य आदि निर्मल फल कहल अछि;राजस कर्म कँ फल दुःख आओर तामस कर्मक फल अज्ञान कहल अछि।।१६।।

सतोगुण सँ ज्ञान उत्पन्न होइत अछि आ रजोगुण सँ निःसंदेह लोभ आओर तमोगुण सँ प्रमाद आ मोह *(एहि अध्यायक श्लोक १३ देखू)* उत्पन्न होइत अछि आ अज्ञान सेहो होइत अछि।।१७।।

सतोगुण मे स्थित पुरुष स्वर्ग आदि उच्चलोकसभ मे जाइत छथि, रजोगुण मे स्थित राजस पुरुष मध्य मे अर्थात् मनुष्यलोकहिं मे रहैत छथि आ तमोगुणक कार्यरूप निद्रा, प्रमाद आओर आलस्य आदि मे स्थित तामस पुरुष अधोगति कँ अर्थात् कीट, पशु आदि नीच योनिसभ कँ आ नरकसभ कँ प्राप्त होइत छथि।।१८।।

जाहि समय द्रष्टा तीनू गुणसभक अतिरिक्त अन्य ककरहुँ कर्ता नहिं देखैत आओर तीनू गुणसभ सँ अत्यन्त पर सच्चिदानन्दघन हमरा– परमात्मा–कँ तत्त्व सँ जनैत छथि, ओहि समय ओ हमर स्वरूप कँ प्राप्त होइत छथि।।१९।।

ई पुरुष शरीरक उत्पत्तिक कारणरूप *(बुद्धि,अहंकार आ मन आओर पाँच ज्ञानेन्द्रियसभ, पाँच कर्मेन्द्रियसभ, पाँच भूत, पाँच इन्द्रियसभक विषय–एहि प्रकार एहि तेइस तत्त्वसभक पिण्डकाय ई स्थूल शरीर प्रकृति सँ उत्पन्न एहि होइबला गुणसभकहिं कार्य अछि, तैं एहि तीन गुणसभ कँ एकर उत्पत्तिक कारण कहल गेल अछि)* एहि तीन गुणसभक उल्लंघन कए कऽ जन्म, मृत्यु, बुढ़ौती आओर सभ प्रकारक दुःखसभ सँ मुक्त भेल परमानन्द कँ प्राप्त होइत छथि ।।२०।।

अर्जुन बजलाह–

एहि तीन गुणसभ मे अतीत पुरुष कोन–कोन लक्षणसभ सँ युक्त होइत छथि आ कोन प्रकार कँ आचरणसभबला होइत छथि आओर यौ प्रभु! मनुष्य कोन उपाय सँ एहि तीनू गुणसभ सँ अतीत होइत छथि?।।२१।।

श्रीभगवान बजलाह–

हौ अर्जुन! जे पुरुष सतोगुणक कार्यरूप प्रकाश *(अन्तःकरण आ इन्द्रिय आदि मे आलस्यक अभाव भएकऽ जे एक प्रकारक चेतना होइत अछि)* कँ आ रजोगुणक कार्यरूप प्रवृत्ति कँ आओर तमोगुणक कार्यरूप मोह *(निद्रा आ आलस्य आदिक बहुलता सँ अन्तःकरण आ इन्द्रियसभ मे चेतनशक्ति कँ लय होएब कँ एतऽ मोह बुझक चाही)* कँ सेहो नहिं तऽ प्रवृत्त भेला पर हुनका सँ द्वेष करैत छथि आ नहिंए निवृत्त भेला पर हुनक आकांक्षा करैत छथि। *(जे पुरुष एक सच्चिदानन्दघन परमात्माटा मे नित्य, एकीभाव सँ स्थित भेल, एहि त्रिगुणमयी मायाक प्रपंचरूप संसार सँ सर्वथा अतीत भए गेलाह अछि, ओहि गुणातीत पुरुष कँ अभिमानरहित अन्तःकरण मे तीनू गुणसभक कार्यरूप प्रकाश, प्रवृत्ति आओर मोह आदि वृत्ति कँ प्रकट भेला आ नहिं भेला पर कोनो कालहुँ मे इच्छा–द्वेष आदि विकार नहिं होइत छैन्हि, यैह हुनक गुण सभ सँ अतीत हेबाक प्रधान लक्षण छैन्हि।)*।।२२।।

जे साक्षीक समान स्थित भेल गुणसभ कँ द्वारा विचलित नहिं कएल जा सकैत छथि आ गुणहिं गुण मे बरतैत *(त्रिगुणमयी माया सँ उत्पन्न भेल अन्तःकरणक सहित इन्द्रियसभ कँ अपन–अपन विषय मे बिचरनाइ)* अछि–एहन बुझैत जे सच्चिदानन्दघन परमात्मा मे एकीभाव सँ स्थित छथि आ ओहि स्थिति सँ कहियो विचलित नहिं होइत छथि।।२३।।

जे निरन्तर आत्मभाव मे स्थित, दुःख–सुख कँ समान बुझएबला, माटि,पाथर आ सोन मे समान भावबला आ अपन निन्दा–स्तुति मे सेहो समान भावबला छथि।।२४।।

जे मान आ अपमान मे सम छथि, मित्र आ वैरीक पक्ष मे सेहो सम छथि आओर सम्पूर्ण आरम्भसभ मे कर्तापनक अभिमान सँ रहित छथि, ओ पुरुष गुणातीत कहल जाइत छथि।।२५।।

आओर जे पुरुष अव्यभिचारी भक्तियोग *(केवल एक सर्वशक्तिमान परमेश्वर वासुदेव भगवान टा कँ अपन स्वामी मानैत स्वार्थ आ अभिमान कँ त्यागि कए श्रद्धा आ भावक सहित, परम प्रेम सँ निरन्तर चिन्तन करब)* कँ द्वारा निरन्तर भजैत छथि, आहो एहि तीनू गुणसभ कँ नीकजकाँ लाँघि कए सच्चिदानन्दघन ब्रह्म कँ प्राप्त होमक योग्य बनि जाइत छथि।।२६।।

कियैक तऽ ओहि अविनाशी परब्रह्म कँ आ अमृतक आओर नित्यधर्मक आ अखण्ड एकरस आनन्दक आश्रय हम छी।।२७।।

एना भगवान द्वारा गायल उपनिषद, ब्रह्मविद्या, योगशास्त्र मे, श्रीकृष्ण आ अर्जुनक बीच भेल संवाद **गुणत्रयविभागयोग** *नामक* ***चौदहम*** *अध्याय समाप्त भेल।*

पन्द्रहम अध्याय : पुरुषोत्तमयोग

श्रीभगवान बजलाह़–

आदिपुरुष परमेश्वररूप जड़िबला *(आदिपुरुष नारायण वासुदेव भगवानहिं नित्य आ अनन्त आओर सभक आधार भेलाक कारण आओर सभ सँ ऊपर नित्यधाम मे सगुणरूप सँ वास करक कारण ऊर्ध्व नाम सँ कहल गेलाह अछि आओर ओ मायापति, सर्वशक्तिमान परमेश्वरहिं संसाररूप वृक्षक कारण छथि, तैं एहि संसारवृक्ष कैं 'ऊर्ध्वमूलबला' कहल जाइत छैक)* आओर ब्रह्मारूप मुख्य शाखाबला *(ओहि आदिपुरुष परमेश्वर सँ उत्पत्तिबला हेबाक कारण, हिरण्यगर्भरूप ब्रह्मा कैं परमेश्वरक अपेक्षा 'अधः' कहल छैन्हि आ वैह एहि संसारक विस्तार करएबला भेला सँ एकर मुख्य शाखा छथि, तैं एहि संसारवृक्ष कैं 'अधःशाखाबला' कहल जाइत छैक)* जाहि संसाररूप पीपरक गाछ कैं अविनाशी *(एहि वृक्षक मूल कारण परमात्मा अविनाशी छथि आओर अनादि काल सँ एकर परम्परा चलल अबैत अछि, तैं)* कहल जाइत अछि आओर वेद जकर पातसभ *(एहि वृक्षक शाखारूप ब्रह्मा सँ प्रकट होमऽबला आ यज्ञ आदि कर्मसभ द्वारा एहि संसारवृक्षक रक्षा आ वृद्धि करएबला एवं शोभा बढ़बएबला हेबाक कारण)* कहल गेल अछि–ओहि संसाररूप वृक्ष कैं जे पुरुष मूलसहित तत्त्व सँ जनैत छथि ओ वेदक तात्पर्य कैं जनएबला छथि *(भगवानक योगमाया सँ उत्पन्न भेल संसार क्षणभंगुर, नाशवान आ दुःखरूप अछि, एकर चिन्तन कैं त्याग कए, केवल परमेश्वरहिं कैं नित्य–निरन्तर, अनन्य प्रेम सँ चिन्तन केनाइ 'वेदक तात्पर्य कैं जननाइ' अछि।)* ।।१।।

ओहि संसारवृक्षक तीनू गुणसभरूपी जलक द्वारा बढ़ल एवं विषयभोगरूप कनोजर (प्रवाल/कोंपल) सभबला *(शब्द, स्पर्श, रूप, रस आ गन्ध–ई पाँचो स्थूलदेह आ इन्द्रियसभक अपेक्षा सूक्ष्म भेलाक कारण ओहि शाखासभक 'कनोजर (प्रवाल/कोंपल)सभ'क रूप मे कहल गेल अछि)* देव, मनुष्य आ तिर्यक आदि योनिरूप शाखासभ *(मुख्य शाखारूप ब्रह्मा सँ सम्पूर्ण लोकसभक सहित देव, मनुष्य आ तिर्यक आदि योनिसभक उत्पत्ति आ विस्तार भेल अछि, तैं हुनक एतऽ 'शाखासभ'क रूप मे वर्णन कएल अछि)* नींचा आ ऊपर सर्वत्र फैलल अछि आओर मनुष्यलोक मे *(अहंता, ममता आ वासनारूप जड़िसभ कैं केवल मनुष्ययोनि मे कर्मसभक अनुसार बन्हएबला कहए कैं कारण ई अछि जे अन्य सभ योनि मे तऽ केवल पूर्वकृत कर्मसभ कैं फल कैं भोगऽक टा कैं अधिकार अछि आ मनुष्ययोनि मे नवीन कर्मसभ कैं करक सेहो अधिकार अछि)* कर्मसभ कैं अनुसार बन्हएबला अहंता–ममता आओर वासनारूप जड़िसभ सेहो नींचा आ ऊपर सभ लोकसभ मे व्याप्त भए रहल अछि।।२।।

एहि संसारवृक्षक स्वरूप जेहन कहल अछि, ओहन एतऽ विचारकाल मे नहिं भेटैत अछि *(एहि संसारक जेहन स्वरूप शास्त्रसभ मे वर्णन कएल गेल अछि आ जेहन देखल–सुनल जाइत अछि, ओहन तत्त्वज्ञान भेलाक बाद नहिं भेटैत अछि, जाहि प्रकार आँखि खुजलाक बाद स्वप्नक संसार नहिं भेटैत अछि)* कियैक तऽ नहिंए एकर आदि अछि *(ई कहक प्रयोजन ई अछि जे कि एकर परम्परा कहिया सँ चलि आबि रहल अछि, तकर कोनो पता नहिं अछि)* आओर नहिंए एकर अन्त अछि *(ई कहक प्रयोजन ई अछि जे कि एकर परम्परा कहिया धरि चलैत रहत तकर कोनो पता नहिं अछि)* आओर नहिंए एकर नींक प्रकारक स्थितिए अछि *(ई कहक प्रयोजन ई अछि जे कि वास्तव मे ई क्षणभंगुर आ नाशवान अछि)*। तैं एहि अहंता, ममता आओर वासनारूप अतिदृढ़ जड़िसभबला संसाररूप पीपरक गाछ कैं दृढ़ वैराग्यरूप शस्त्र *(ब्रह्मलोक तक कैं भोग क्षणिक आ नाशवान अछि, एहन बुझि कए एहि संसारक समस्त विषयभोगसभ मे सत्ता, सुख, प्रीति आ रमणीयता कैं नहिं भासनाइए दृढ़ 'वैराग्यरूप शस्त्र' अछि)* द्वारा काटि कए *(स्थावर,जंगमरूप यावत् मात्र संसारक चिन्तन कैं आओर अनादिकाल सँ अज्ञानक द्वारा दृढ़ भेल अहंता, ममता आओर वासनारूप जड़िसभ कैं त्याग केनाइए संसारवृक्षक अवान्तर 'जड़िसभक संग कटनाइ' अछि।)* ।।३।।

ओकर बाद ओहि परम–पदरूप परमेश्वर कें नीकजकाँ ताकक चाही, जाहि मे गेल पुरुष फेर लौटि कऽ संसार मे नहिं अबैत छथि आ जाहि परमेश्वर सँ एहि पुरातन संसार–वृक्षक प्रवृत्ति विस्तार कें प्राप्त भेल अछि, ओहि आदिपुरुष नारायणक हम शरण मे छी–एहि प्रकार दृढ़ निश्चय कए कऽ ओहि परमेश्वरक मनन आ निदिध्यासन करक चाही।।४।।

जिनक मान आ मोह नष्ट भए गेलैन्हि अछि, जे आसक्तिरूप दोष कें जीति लेलैन्हि अछि, जिनक परमात्माक स्वरूप मे नित्य स्थिति छैन्हि आ जिनक कामनासभ पूर्णरूप सँ नष्ट भए गेलैन्हि अछि–ओ सुख–दुःख नामक द्वन्द्वसभ सँ विमुक्त ज्ञानीजन ओहि अविनाशी परमपद कें प्राप्त होइत छथि।।५।।

जाहि परमपद कें प्राप्त भए मनुष्य घुरि कए संसार मे नहिं अबैत छथि, ओहि स्वयंप्रकाश परमपद कें ने सूर्य प्रकाशित कए सकैत छथि, ने चन्द्रमा आओर नहिंए अग्नि; वैह हमर परमधाम अछि *(परमधामक अर्थ अध्याय ८: श्लोक २१ मे देखू)*।।६।।

एहि देह मे ई सनातन जीवात्मा हमरहिं अंश अछि *(जेना विभागरहित स्थित भेलहुँ महा आकाश घटसभ मे अलग–अलक जकाँ लगैत अछि, ओहिना सभ भूत सभ मे एकरूप सँ स्थित भेलहुँ पर परमात्मा अलग–अलगक जकाँ लगैत छथि, तैं देह मे स्थित जीवात्मा कें भगवान अपन 'सनातन अंश' कहलाह अछि)* आओर वैह एहि प्रकृति मे स्थित मन आ पाँचो इन्द्रिय सभ कें आकर्षण करैत अछि।।७।।

वायु गन्धक स्थान सँ गन्ध कें जेना ग्रहण कए कऽ लए जाइत अछि, ओहिना देह आदिक स्वामी जीवात्मा सेहो जाहि शरीरक त्याग करैत अछि, ओहि सँ एहि मन सहित इन्द्रियसभ कें ग्रहण कए कऽ फेर जाहि शरीर कें प्राप्त होइत अछि–ओहि मे जाइत अछि।।८।।

ई जीवात्मा श्रोत, आँखि आ त्वचा कें आओर रसना, घ्राण आ मन कें आश्रय कए कऽ –अर्थात् एहि सभहक मददिए सँ विषयसभक सेवन करैत अछि।।६।।

शरीर कें छोडि कए जाइत कँ वा शरीर मे स्थित भेल कें वा विषयसभ कें भोगि रहल कें एहि प्रकार तीनू गुणसभ सँ युक्त भेल कें सेहो अज्ञानीजन नहिं जनैत छथि, केवल ज्ञानरूप आँखिसभबला विवेकशील ज्ञानीए तत्त्व सँ जनैत छथि।।१०।।

यत्न करएबला योगीजन सेहो अपन हृदय मे स्थित एहि आत्मा कें तत्त्व सँ जनैत छथि; किन्तु जे अपन अन्तःकरण कें शुद्ध नहिं केलैन्हि अछि, एहन अज्ञानीजन तऽ यत्न करैत रहलहुँ पर एहि आत्मा कें नहिं जनैत छथि।।११।।

सूर्य मे स्थित जे तेज सम्पूर्ण जगत कें प्रकाशित करैत अछि आ जे तेज चन्द्रमा मे अछि आओर जे अग्नि मे अछि–ओकरहुँ तूँ हमरहिं तेज जानऽ।।१२।।

आओर हमहिं पृथ्वी मे प्रवेश कए कऽ अपन शक्ति सँ सभ भूतसभ कें धारण करैत छी आओर रसस्वरूप अर्थात् अमृतमय चन्द्रमा बनि कए सम्पूर्ण औषधिसभ कें अर्थात् वनस्पतिसभ कें पुष्ट करैत छी ।।१३।।

हमहिं सभ प्राणीसभ कें शरीर मे स्थित रहएबला प्राण आओर अपान सँ संयुक्त वैश्वानर अग्निरूप भए चारि प्रकारक अन्न *(चिबाकए खाएबला 'भक्ष्य' जेना सोहाड़ी आदि, घोंटल जाएबला 'भोज्य' जेना दूध आदि, चाटल जाएबला 'लेह्य' जेना चटनी आदि आ चूसए खाएबला 'चोष्य' जेना कुसियार आदि)* कें पचबैत छी।।१४।।

हमहिं सभ प्राणीसभक हृदय मे अन्तर्यामीरूप सँ स्थित छी आ हमरहिं सँ स्मृति, ज्ञान आओर अपोहन *(विचारक द्वारा बुद्धि मे रहएबला संशय–विपर्यय आदि दोषसभ कँ हटाएब)* होइत अछि आ सभ वेदसभ द्वारा हमहिं जनबाक योग्य *(सभ वेदसभक तात्पर्य परमेश्वर कँ जनेबाक अछि, तैँ सभ वेद द्वारा 'जनबाक योग्य एक परमेश्वरहिं छथि)* छी आओर वेदान्तक कर्ता आओर वेदसभ कँ जनएबला सेहो हमहिं छी।।१५।।

एहि संसार मे नाशवान आओर अविनाशी सेहो यैह दू प्रकारक *(अध्याय ७:श्लोक ४–५ मे जे अपरा आओर परा प्रकृति कँ नाम सँ कहल गेल छथि आओर अध्याय १३: श्लोक १ मे जे क्षेत्र आ क्षेत्रज्ञक नाम सँ कहल गेल छथि, ओहि दुनुक एतऽ क्षर आ अक्षरक नाम सँ वर्णन कएल अछि)* पुरुष छथि। एहि मे सम्पूर्ण भूत प्राणीसभक शरीर तऽ नाशवान आओर जीवात्मा अविनाशी कहल जाइत अछि।।१६।।

एहि दूनू सँ उत्तम पुरुष तँ अन्यहिं छथि, जे तीनू लोकसभ मे प्रवेश कए कऽ सभक धारण–पोषण करैत छथि आओर अविनाशी परमेश्वर आ परमात्मा–एहि प्रकार कहल गेल छथि।।१७।।

कियैक तऽ हम नाशवान जड़वर्ग–क्षेत्र सँ तऽ सर्वथा अतीत छी आओर अविनाशी जीवात्मा सँ सेहो उत्तम छी, तैँ एहि लोक मे आओर वेद मे सेहो पुरुषोत्तम नाम सँ प्रसिद्ध छी।।१८।।

हौ भारत! जे ज्ञानी पुरुष हमरा एहि प्रकार तत्त्व सँ पुरुषोत्तम जनैत छथि, ओ सर्वज्ञ पुरुष सभ प्रकार सँ निरन्तर हमरा–वासुदेव परमेश्वरहिं–कँ भजैत छथि।।१९।।

हौ निष्पाप अर्जुन! एहि प्रकार ई अति रहस्ययुक्त गोपनीय शास्त्र हमरा द्वारा कहल गेल, एकरा तत्त्व सँ जानि कए मनुष्य ज्ञानवान आ कृतार्थ भए जाइत छथि।।२०।।

एना भगवान द्वारा गायल उपनिषद, ब्रह्मविद्या, योगशास्त्र मे, श्रीकृष्ण आ अर्जुनक बीच भेल संवाद ***पुरुषोत्तमयोग*** *नामक* ***पन्द्रहम*** *अध्याय समाप्त भेल।*

सोलहम अध्याय : दैवासुरसम्पद्विभागयोग

श्रीभगवान बजलाह–

भयक सर्वथा अभाव, अन्तःकरणक सम्पूर्ण निर्मलता, तत्त्वज्ञानक लेल ध्यानयोग मे निरन्तर दृढ़ स्थिति *(परमात्माक स्वरूप कँ तत्त्व सँ जानक लेल सच्चिदानन्दघन परमात्माक स्वरूप मे एकीभाव सँ ध्यानक गाढ़ स्थितिकहिं नाम 'ज्ञान–योगव्यस्थिति' बुझक चाही)* आओर सात्त्विक दान*(अध्याय १७: श्लोक २० मे जकर विस्तार कहल अछि)* इन्द्रियसभक दमन, भगवान, देवता आओर गुरुजनसभक पूजा आ अग्निहोत्र आदि उत्तम कर्मसभक आचरण एवं वेद–शास्त्र आदि सभक पठन–पाठन आओर भगवानक नाम आ गुणसभक कीर्तन, स्वधर्मपालनक लेल कष्टसहन आओर शरीर आ इन्द्रियसभक सहित अन्तःकरणक सरलता ।।१।।

मन, वाणी आ शरीर सँ कोनो प्रकार किनकहुँ कष्ट नहिं देनाइ, यथार्थ आओर प्रिय भाषण*(अन्तःकरण आओर इन्द्रियसभ कँ द्वारा जेना निश्चय कएल गेल हो ओहिना कँ ओहिनाहिं प्रिय शब्द मे कहबाक नाम 'सत्यभाषण' अछि),* अपन अपकार करएबला पर सेहो क्रोधक नहिं भेनाइ, कर्मसभ मे कर्तापनक अभिमानक त्याग, अन्तःकरणक उपरति अर्थात् चित्तक चंचलताक अभाव, किनकहुँ निन्दा आदि नहिं केनाइ, सभ भूतप्राणीसभ मे हेतुरहित दया, इन्द्रियसभक विषयसभक संग संयोग भेलहुँ पर ओहि मे आसक्ति कँ नहिं भेनाइ, कोमलता, लोक आ शास्त्र सँ विरुद्ध आचरण मे लज्जा आओर व्यर्थ चेष्टासभक अभाव ।।२।।

तेज *(श्रेष्ठ पुरुषसभक ओहि शक्तिक नाम 'तेज' अछि जकर प्रभाव सँ हुनक समक्ष विषयासक्त आ नीच प्रकृतियोबला मनुष्य सेहो प्रायः अन्यायाचरण सँ रुकि कए हुनक कथनानुसार श्रेष्ठ कर्मसभ मे प्रवृत्त भए जाइत छथि)*, क्षमा, धैर्य, बाहरक शुद्धि *(अध्याय १३: श्लोक ७क टिप्पणी देखक चाही)* आ किनकहुँ मे शत्रुभाव कैँ नहिं भेनाइ आ अपना मे पूज्यताक अभिमानक अभाव–ई सभ तऽ हौ अर्जुन! दैवी सम्पदा कैँ लए कऽ उत्पन्न भेल पुरुषक लक्षण अछि।।३।।

हौ पार्थ! दम्भ, घमण्ड आओर अभिमान आ क्रोध, कठोरता आओर अज्ञान सेहो–ई सभ आसुरी सम्पदा कैँ लए कऽ उत्पन्न भेल पुरुषक लक्षण अछि।।४।।

दैवी सम्पदा मुक्तिक लेल आ आसुरी सम्पदा बान्हक लेल मानल गेल अछि। तैँ हौ अर्जुन! तूँ शोक नहिं करऽ कियैक तऽ तूँ दैवी सम्पदा कैँ लए कऽ उत्पन्न भेलह अछि।।५।।

हौ अर्जुन! एहि लोक मे भूतसभक सृष्टि अर्थात् मनुष्य समुदाय दुइये प्रकारक अछि, एक तऽ दैवी प्रकृतिबला आ दोसर आसुरी प्रकृतिबला। ओहि मे दैवी प्रकृतिबला तऽविस्तारपूर्वक कहल गेलह, आब तूँ आसुरी प्रकृतिबला मनुष्य समुदाय कैँ सेहो विस्तारपूर्वक हमरा सँ सुनऽ।।५।।

आसुर स्वभावबला मनुष्य प्रवृत्ति आओर निवृत्ति–एहि दुनुए के नहिं जनैत छथि। तैँ हुनका मे ने तऽ बाहर–भीतरक शुद्धि अछि आ नहिंए श्रेष्ठ आचरण अछि आ नहिंए सत्यभाषणे अछि।।७।।

आओर ओ आसुरी प्रकृतिबला मनुष्य कहल करैत छथि जे कि जगत आश्रयरहित, सर्वथा असत्य आ बिना ईश्वर कैँ अपने–आप केवल स्त्री–पुरुषक संयोग सँ उत्पन्न अछि, तैँ केवल कामहिं एकर कारण अछि। एकर सिवाए आओर की अछि?।।८।।

एहि मिथ्या ज्ञान कैँ अबलम्बन कए कऽ–जिनक स्वभाव नष्ट भए गेलैन्हि अछि आ जिनक बुद्धि मन्द छैन्हि, ओ सभक अपकार करएबला क्रूरकर्मी मनुष्य केवल जगतक नाशक लेलहिं समर्थ होइत छथि।।९।।

ओ दम्भ, मान आ मद सँ युक्त मनुष्य कोनहुँ प्रकार पूर्ण नहिं होमऽबला कामनासभक आश्रय लएकऽ अज्ञान सँ मिथ्या सिद्धान्तसभ कैँ ग्रहण कँएऽ कँ वा आओर भ्रष्ट आचरणसभ कैँ धारण कएकऽ संसार मे विचरण करैत छथि।।१०।।

आओर ओ मृत्युपर्यन्त रहएबला असंख्य चिन्तासभक आश्रय लेनिहार, विषयभोगसभ कैँ भोगए मे तत्पर रहएबला आओर 'एतबहिं सुख अछि'–एहि प्रकार मानएबला होइत छथि।।११।।

ओ आशाक सैकड़ों फाँसीसभ सँ बन्हल मनुष्य काम–क्रोधक परायण भएकऽ विषयभोगसभक लेल अन्यायपूर्वक धन आदि पदार्थ सभक संग्रह करए कैँ चेष्टा करैत छथि।।१२।।

ओ सोचल करैत छथि कि हम आइ ई प्राप्त कए लेलहुँ अछि आओर आब एहि मनोरथ कैँ प्राप्त कए लेब। हमरा लग ई एतेक धन अछि आओर तैयो ई भए जाएत।।१३।।

ओ शत्रु हमरा द्वारा मारल गेल आओर ओहि दोसरो शत्रुसभ कैँ सेहो हम मारि देब। हम ईश्वर छी, ऐश्वर्य कैँ भोगएबला छी। हम सभ सिद्धिसभ सँ युक्त छी आओर बलबान आ सुखी छी।।१४।।

हम बड्ड धनी आ पैघ कुटुम्बबला छी। हमर समान दोसर के अछि? हम यज्ञ करब, दान देब आओर आमोद–प्रमोद करब। एहि प्रकार अज्ञान सँ मोहित रहएबला आओर अनेक प्रकार सँ भ्रमित चित्तबला मोहरूप जाल सँ समावृत आओर विषयभोगसभ मे अत्यन्त आसक्त असुरसभ महान अपवित्र नरक मे खसैत छथि ।।१५–१६।।

ओ अपनहिं–आप कँ श्रेष्ठ मानएबला घमण्डी पुरुष धन आ मानक मद सँ युक्त भएकऽ केवल नाममात्रक यज्ञसभ द्वारा पाखण्ड सँ शास्त्रविधिरहित यजन करैत छथि ।।१७।।

ओ अहंकार, बल, घमण्ड, कामना आओर क्रोध आदिक परायण आओर दोसर कँ निन्दा करएबला पुरुष अपन आ दोसर कँ शरीर मे स्थित हमरा–अन्तर्यामी सँ द्वेष करएबला होइत छथि।।१८।।

ओहि द्वेष करएबला पापाचारी आओर क्रूरकर्मी नराधमसभ कँ हम संसार मे बेर–बेर आसुरी योनिए सभ मे दैत छी।।१९।।

हौ अर्जुन! ओ मूढ़ हमरा नहिं प्राप्त भइयेकऽ जन्म–जन्म मे आसुरी योनि के प्राप्त होइत छथि, फेर ओहि सँ सेहो अति नीच गति कँ प्राप्त होइत छथि अर्थात् घोर नरकसभ मे खसैत छथि ।।२०।।

काम, क्रोध आ लोभ–ई तीन प्रकारक नरकक द्वार *(सभ अनर्थसभक मूल आ नरकक प्राप्ति मे हेतु भेला सँ एतऽ काम, क्रोध आ लोभ कँ नरकक द्वारं कहल गेल अछि)* आत्मा कँ नाश करएबला अर्थात् ओकरा अधोगति मे लऽ जाइबला छथि। ते एहि तीनू कँ त्यागि देबाक चाही।।२१।।

हौ अर्जुन! एहि तीन नरकक द्वारसभ सँ मुक्त पुरुष अपन कल्याणक आचरण *(अपन उद्धारक लेल भगवानक आज्ञाक अनुसार बरतनाइ)* करैत छथि, एहि सँ ओ परमगति कँ जाइत छथि अर्थात् हमरा प्राप्त भए जाइत छथि।।२२।।

जे पुरुष शास्त्रविधि कँ त्याग कए अपन इच्छा सँ मनमाना अन्याय करैत छथि, ओ ने सिद्धि कँ प्राप्त होइत छथि, ने परमगति कँ आ ने सुखहिं कँ।।२३।।

एहि सँ तोरा लेल एहि कर्तव्य आ अकर्तव्यक व्यवस्था मे शास्त्रहिं प्रमाण अछि। एहन जानि कऽ तूँ शास्त्रविधि सँ नियत कर्महिं कँ करक योग्य छऽ।।२४।।

एना भगवान द्वारा गायल उपनिषद, ब्रह्मविद्या, योगशास्त्र मे, श्रीकृष्ण आ अर्जुनक बीच भेल संवाद ***दैवासुरसम्पद्‌विभागयोग*** *नामक* ***सोलहम*** *अध्याय समाप्त भेल।*

सतरहम अध्याय : श्रद्धात्रयविभागयोग

अर्जुन बजलाह–

यौ कृष्ण! जे मनुष्य शास्त्रविधि कँ त्याग कए श्रद्धा सँ युक्त भेल देव आदिक पूजा करैत छथि, हुनक स्थिति फेर केहेन छैन्हि? सात्विकी छैन्हि वा राजसी कि तामसी?।।१।।

श्रीभगवान बजलाह–

मनुष्यसभक ओ शास्त्रीय संस्कारसभ सँ रहित केवल स्वभाव सँ उत्पन्न श्रद्धा *(अनन्त जन्मसभ मे कएल कार्यसभक संचित संस्कारसभ सँ उत्पन्न श्रद्धा "स्वभावजा" श्रद्धा कहल जाइत अछि)* सात्विकी आ राजसी आओर तामसी–एहि तीनू प्रकार कँ होइत छैन्हि। ओकरा तूँ हमरा सँ सुनऽ ।।२।।

हौ भारत! सभ मनुष्यसभक श्रद्धा हुनक अन्तःकरणक अनुरूप होइत छैन्हि। ई पुरुष श्रद्धामय छथि, तैँ जे पुरुष जेहन श्रद्धाबला छथि, ओ स्वयं सेहो सैह छथि।।३।।

सात्विक पुरुष देवसभ कँ पूजैत छथि, राजस पुरुष यक्ष आ राक्षससभ कँ आओर अन्य जे तामस मनुष्य छथि, ओ प्रेत आ भूतगणसभ कँ पूजैत छथि।।४।।

जे मनुष्य शास्त्रविधि सँ रहित केवल मनःकल्पित घोर तप कँ तपैत छथि आ दम्भ आओर अहंकार सँ युक्त आ कामना, आसक्ति आओर बलक अभिमान सँ सेहो युक्त छथि।।५।।

जे शरीररूप सँ स्थित भूतसमुदाय कँ आओर अन्तःकरण मे स्थित हमरा–परमात्मा कँ सेहो कृश करएबला छथि *(शास्त्र सँ विरुद्ध उपवास आदि घोर आचरणसभ द्वारा शरीर कँ सुखेनाइ आ भगवानक अंशरूप जीवात्मा कँ क्लेश देनाइ, भूतसमुदाय कँ आओर अन्तर्यामी परमात्मा कँ 'कृश केनाइ' अछि),* ओहि अज्ञानीसभ कँ आसुर–स्वभावबला बुझऽ।।६।।

भोजनहुँ सभ कँ अपन–अपन प्रकृत्ति कँ अनुसार तीन प्रकारक प्रिय होइत अछि। आओर ओहिना यज्ञ, तप आ दान सेहो तीन–तीन प्रकारक होइत अछि। हुनक एहि अलग–अलग भेद कँ तूँ हमरा सँ सुनऽ।।७।।

आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख आ प्रीति कँ बढ़बएबला, रसयुक्त, चिक्कन आ स्थिर रहएबला *(जाहि भोजनक सार शरीर मे बहुत काल धरि रहैत अछि)* आओर स्वभाव सँ मन कँ प्रिय–एहन आहार अर्थात् भोजन करएबला पदार्थ सात्विक पुरुष कँ प्रिय होइत छैन्हि ।।८।।

कड़ू, खट्टा, नूनगर, बहुत गरम, तीक्ष्ण, रूक्ष, दाहकारक आओर दुःख, चिन्ता आ रोगसभ कँ उत्पन्न करएबला पदार्थ राजस पुरुष कँ प्रिय होइत छैन्हि।।६।।

जे भोजन अधपकल, रसरहित, दुर्गन्धयुक्त, बाऽइस आ उच्छिष्ट अछि आओर जे अपवित्र सेहो अछि, ओ भोजन तामस पुरुष कँ प्रिय होइत छैन्हि।।१०।।

जे शास्त्रविधि सँ नियत, यज्ञ करनाइए कर्तव्य अछि–एहि प्रकार मन कँ समाधान कए कऽ, फल नहिं चाहएबला पुरुषसभ द्वारा कएल जाइत अछि, ओ सात्विक अछि।।११।।

परन्तु हौ अर्जुन! केवल दम्भाचरणक लेल वा फल कँ सेहो दृष्टि मे राखि कए जे यज्ञ कएल जाइत अछि, ओहि यज्ञ कँ तूँ राजस जानऽ।।१२।।

शास्त्रविधि सँ हीन, अन्नदान सँ रहित, बिना मंत्रसभक, बिना दक्षिणा कँ आओर बिना श्रद्धा कँ कएल जाइबला यज्ञ कँ तामस यज्ञ कहल जाइत छैक।।१३।।

देवता, ब्राह्मण, गुरु *(माता–पिता, आचार्य आ वृद्ध आओर अपना सँ जे कोनो प्रकार सँ पैघ होथि)* आओर ज्ञानीजनसभक पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य आ अहिंसा–ई शरीर–सम्बन्धी तप कहल जाइत अछि।।१४।।

जे उद्वेग नहिं करएबला प्रिय आ हितकारक आओर यथार्थ भाषण *(मन आ इन्द्रियसभ द्वारा जेहन अनुभव कएल हो, ठीक ओहिना कहनाइ)* आओर जे वेद–शास्त्रसभ कँ पठन कँ आ परमेश्वरक नाम–जप कँ अभ्यास अछि–वैह वाणी सम्बन्धी तप कहल जाइत अछि।।१५।।

मनक प्रसन्नता, शान्तभाव, भगवानक चिन्तन करबाक स्वभाव, मनक निग्रह आओर अन्तःकरणक भावसभक नीक–जकाँ पवित्रता–एहि प्रकार ई मनसम्बन्धी तप कहल जाइत अछि।।१६।।

फल कँ नहिं चाहएबला योगी पुरुषसभ द्वारा परम श्रद्धा सँ कएल ओहि पूर्वोक्त तीन प्रकार कँ तप कँ सात्विक कहल जाइत अछि ।।१७।।

जे तप सत्कार, मान आ पूजाक लेल आओर अन्य कोनहुँ स्वार्थक लेल सेहो स्वभाव सँ या पाखण्ड सँ कएल जाइत अछि ओ अनिश्चित फलबला *(जकर फल होमऽ–नहिं होमऽ मे शंका हो)* आओर क्षणिक फलबला तप एतऽ राजस कहल गेल अछि।।१८।।

जे तप मूढ़तापूर्वक हठ सँ, मन, वाणी आ शरीरक पीड़ाक सहित वा दोसरक अनिष्ट करए लेल कएल जाइत अछि–ओ तप तामस कहल गेल अछि।।१६।।

दान देनाइए कर्तव्य अछि–एहन भाव सँ जे दान देश आओर काल *(जाहि देश–काल मे जाहि वस्तुक अभाव हो, वैह देश–काल ओहि वस्तु द्वारा प्राणीसभक सेवा करक लेल योग्य बुझल जाइत अछि)* आओर पात्र *(भूखल, अनाथ, दुःखी, रोगी आओर असमर्थ आ भिक्षुक आदि तऽ अन्न, वस्त्र आ औषधि आओर जाहि वस्तुक जिनका लग अभाव हो, ओहि वस्तु द्वारा सेवा करक लेल योग्य पात्र बुझल जाइत छथि आओर श्रेष्ठ आचरणसभबला विद्वान ब्राह्मणजन धन आदि सभ प्रकारक पदार्थसभ सँ सेवाक लेल योग्य पात्र बुझल जाइत छथि)* कँ प्राप्त भेलापर उपकार नहि करएबलाक प्रति देल जाइत अछि, ओ दान सात्त्विक कहल गेल अछि।।२०।।

किन्तु जे दान क्लेशपूर्वक *(जेना प्रायः वर्तमान समयक चन्दा आदि मे धन देल जाइत अछि)* आओर प्रत्युपकारक प्रयोजन सँ वा फल कँ दृष्टि मे राखि कए *(अर्थात् मान, बड़ाइ, प्रतिष्ठा आओर स्वर्ग आदिक प्राप्तिक लेल वा रोग आदिक निवृत्तिक लेल)* देल जाइत अछि, ओ दान राजस कहल गेल अछि।।२१।।

जे दान बिना सत्कार कँ वा तिरस्कारपूर्वक अयोग्य देश–काल मे आ कुपात्र कँ प्रति देल जाइत अछि, ओ दान तामस कहल गेल अछि।।२२।।

ऊँ, तत्, सत्–एहन तीन प्रकारक सच्चिदानन्दघन ब्रह्मक नाम कहल गेल छैन्हि, ओहि सँ सृष्टिक आदिकाल मे ब्राह्मण आ वेद आओर यज्ञसभ रचल गेलाह।।२३।।

तैं वेद–मन्त्रसभक उच्चारण करएबला श्रेष्ठ पुरुषसभक शास्त्रविधि सँ नियत यज्ञ, दान आओर तपरूप क्रियासभ हमेशा 'ऊँ', एहि परमात्माक नाम कँ उच्चारण कए कऽ आरम्भ होइत अछि ।।२४।।

'तत्' अर्थात् 'तत्' नाम सँ कहलजाएबला परमात्माहिंक ई सभ अछि–एहि भाव सँ फल कँ नहिं चाहि कए नाना प्रकारक यज्ञ, तपरूप क्रियासभ आओर दानरूप क्रियासभ कल्याणक इच्छाबला पुरुषसभ द्वारा कएल जाइत अछि ।।२५।।

'सत्'–एहि प्रकार परमात्माक नाम सत्यभाव मे आओर श्रेष्ठभाव मे प्रयोग कएल जाइत अछि आओर हौ पार्थ! उत्तम कर्म मे सेहो 'सत्' शब्दक प्रयोग कएल जाइत अछि।।२६।।

आओर यज्ञ, तप आ दान मे जे स्थिति अछि, ओ सेहो 'सत्' एहि प्रकार कहल जाइत अछि आओर ओहि परमात्मा कँ लेल कएल कर्म निश्चयपूर्वक 'सत्'–एहन कहल जाइत अछि।।२७।।

हौ अर्जुन! बिना श्रद्धा कँ कएल हवन, देल दान आ तपल तप आओरो जे किछुओ शुभ कर्म अछि–ओ समस्त 'असत्'–एहि प्रकार कहल जाइत अछि; तैं ओ ने तऽ एहि लोक मे लाभदायक अछि आ नहिंए मरलाक बादहिं।।२८।।

एना भगवान द्वारा गायल उपनिषद, ब्रह्मविद्या, योगशास्त्र मे, श्रीकृष्ण आ अर्जुनक बीच भेल संवाद ***श्रद्धात्रयविभागयोग*** *नामक* ***सतरहम*** *अध्याय समाप्त भेल।*

अठारहम अध्याय : मोक्षसंन्यासयोग

अर्जुन बजलाह़—

यौ महाबाहो! यौ अन्तर्यामी! यौ वासुदेव! हम संन्यास आ त्याग कँ अलग–अलग सँ जानए चाहैत छी।१।।

श्रीभगवान बजलाह़—

कतेको पण्डितजन तऽ काम्यकर्मसभ *(स्त्री, पुत्र, आ धन आदि प्रिय वस्तुसभ कँ प्राप्तिक लेल आओर रोग–संकट आदिक निवृत्तिक लेल जे यज्ञ, दान, तप आ उपासना आदि कर्म कएल जाइत अछि)* कँ त्याग कँ संन्यास बुझैत छथि आओर दोसर विचारकुशल पुरुष 'सभ कर्मसभक फल कँ त्याग' (*ईश्वरक भक्ति, देवतासभक पूजा, माता–पिता गुरुजनसभक सेवा, यज्ञ, दान आओर तप आ वर्णाश्रमक अनुसार आजीविका द्वारा गृहस्थक निर्वाह आ शरीर सम्बन्धी खानपान आदि जतेक कर्तव्यकर्म अछि, ओहि सभ मे एहि लोकक आ परलोकक सम्पूर्ण कामनासभ कँ त्याग)* कँ त्याग कहैत छथि।।२।।

कइएक विद्वान एहन कहैत छथि कि कर्ममात्र दोषयुक्त अछि, तैं त्यागक योग्य अछि आ दोसर विद्वान कहैत छथि कि यज्ञ, दान आओर तपरूप कर्म त्यागक योग्य नहिं अछि।।३।।

हौ पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन! संन्यास आ त्याग, एहि दूनू मे पहिले त्यागक विषय मे तूँ हमर निश्चय सुनऽ। कियैक तऽ त्याग सात्त्विक, राजस आ तामस भेद सँ तीन प्रकारक कहल गेल अछि।।४।।

यज्ञ, दान आओर तपरूप कर्म त्याग करए कँ योग्य नहिं अछि, बल्कि ओ तऽ अवश्य कर्तव्य अछि, कियैक तऽ यज्ञ, दान आओर तप–ई तिनहुँ टा कर्म बुद्धिमान पुरुषसभ कँ *(ओ पुरुष बुद्धिमान छथि, जे फल आ आसक्ति कँ त्याग कए केवल भगवानक लेल कर्म करैत छथि)* पवित्र करएबला अछि।।५।।

तैं हौ पार्थ! एहि यज्ञ, दान आओर तपरूप कर्मसभ कँ आ आओरो सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मसभ कँ आसक्ति आ फलसभ कँ त्याग कए कऽ अवश्य करक चाही; ई हमर निश्चय कएल उत्तम मत अछि।।६।।

(निषिद्ध आ काम्यकर्मसभक तऽ स्वरूप सँ त्याग केनाइ उचिते अछि) परन्तु नियत कर्म *(एहि अध्यायक श्लोक ४८ क टिप्पणी मे एकर अर्थ देखक चाही)* कँ स्वरूप सँ त्याग उचित नहिं अछि। तैं मोहक कारण ओकर त्याग कऽ देनाइ तामस त्याग कहल गेल अछि।।७।।

'जे किछु कर्म अछि, ओ सभ दुःखरूपहिं अछि'–एहन बुझि कए यदि कियो शारीरिक क्लेश कँ भय सँ कर्तव्यकर्मसभ कँ त्याग कए दियै, तऽ ओ एहन राजस त्याग कए कऽ त्यागक फल कँ कोनो प्रकार सँ नहिं पबैत अछि।।८।।

हौ अर्जुन! जे 'शास्त्रविहित कर्म केनाइ कर्तव्य अछि'–एहि भाव सँ आसक्ति आ फलक त्याग कए कऽ कएल जाइत अछि–ओ सात्त्विक त्याग मानल गेल अछि।।९।।

जे मनुष्य अकुशल कर्म सँ द्वेष नहिं करैत छथि आओर कुशल कर्म मे आसक्त नहिं होइत छथि–ओ शुद्ध सतोगुण सँ युक्त पुरुष संशयरहित, बुद्धिमान ओ सच मे त्यागी छथि।।१०।।

कियैक तऽ शरीरधारी कोनो मनुष्यक द्वारा सम्पूर्णता सँ सभ कर्मक त्याग कएल जाएब संभव नहिं अछि, तैं जे कर्मफलक त्यागी छथि–वैह त्यागी छथि–एहन कहल जाइत अछि।।११।।

कर्मफलक त्याग नहिं करएबला मनुष्यसभक कर्मसभ कैँ तऽ नीक– बेजाए आ फेंटल, एहन तीन प्रकारक फल मरऽक बाद अवश्य होइत छैन्हि, किन्तु कर्मफलक त्याग कए देबऽबला मनुष्यसभ कैँ कर्मसभक फल कोनहुँ काल मे नहिं होइत छैन्हि।।१२।।

हौ महाबाहो! सम्पूर्ण कर्मसभक सिद्धि कैँ ई पाँच हेतु कर्मसभक अन्त करैक लेल उपाय बतबएबला सांख्यशास्त्र मे कहल गेल अछि, हुनका तूँ हमरा सँ नीकजकाँ जानऽ।१३।।

एहि विषय मे अर्थात् कर्मसभक सिद्धि मे अधिष्ठान *(जिनक आश्रय सँ कर्म कएल जाए)* आओर कर्ता आ भिन्न–भिन्न प्रकार कैँ करण *(जाहि–जाहि इन्द्रियसभ कैँ आओर साधनसभ कैँ द्वारा कर्म कएल जाइत अछि)* आओर नाना प्रकार कैँ अलग–अलग चेष्टासभ आओर ओहिना पाँचम हेतु दैव *(पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मसभक संस्कारसभ)* अछि।।१४।।

मनुष्य मन, वाणी आ शरीर सँ शास्त्रानुकूल वा विपरीत जे किछुओ कर्म करैत अछि–ओकर ई पाँचो कारण अछि।।१५।।

परन्तु एहन भेनहुँ पर सेहो जे मनुष्य अशुद्धबुद्धि *(सत्संग आ शास्त्रक अभ्यास सँ आओर भगवानक लेल कर्म आ उपासना कैँ कएला सँ मनुष्यक बुद्धि शुद्ध होइत छैक, तैँ जे उपर्युक्त साधनसभ सँ रहित छथि, हुनक बुद्धि अशुद्ध छैन्हि, एहन बुझक चाही)* हेबाक कारण ओहि विषय मे अर्थात् कर्मसभ कैँ होएबा मे केवल शुद्धस्वरूप आत्मा कैँ कर्ता बुझैत छथि, ओ मलिन बुद्धिबला अज्ञानी यथार्थ नहिं बुझैत छथि।।१६।।

जाहि पुरुष कैँ अन्तःकरण मे 'हम कर्ता छी' एहन भाव नहिं छैन्हि आ जिनक बुद्धि सांसारिक पदार्थसभ मे आओर कर्मसभ मे लिपायमान नहिं होइत छैन्हि, ओ पुरुष एहि सभ लोकसभ कैँ मारियो कऽ वास्तव मे ने तऽ मारैत छथि आ ने पाप सँ बन्हाइत छथि *(जेना आगि, वायु आ जलक द्वारा प्रारब्धवश कोनो प्राणीक हिंसा होइत देखए मे आबए, तैयो ओ वास्तव मे हिंसा नहिं अछि, ओहिना जाहि पुरुष के देह मे अभिमान नहिं छैन्हि आओर स्वार्थरहित केवल संसारक हितक लेलहिं जिनक सम्पूर्ण क्रियासभ होइत छैन्हि, ओहि पुरुष के शरीर आओर इन्द्रियसभ आदि कैँ द्वारा यदि कोनो प्राणीक हिंसा होइत लोकदृष्टि मे देखल जाए, तैयो ओ वास्तव मे हिंसा नहिं अछि; कियैक तऽ आसक्ति, स्वार्थ आ अहंकार कैँ नहिं भेला सँ कोनो प्राणीक हिंसा भइए नहिं सकैत अछि आओर बिना कर्तृत्वाभिमान कैँ कएल कर्म वास्तव मे अकर्महिं अछि, तैँ ओ पुरुष 'पाप सँ नहिं बन्हाइत छथि'।)*।।१७।।

ज्ञाता *(जनइबला)*, ज्ञान *(जकरा द्वारा जानल जाए)* आओर ज्ञेय *(जानए मे अबएबला)*–ई तीन प्रकारक कर्म–प्रेरणा अछि आओर कर्ता *(कर्म करएबला)*, करण *(जाहि साधनसभ सँ कर्म कयल जाए)* आओर क्रिया *(करबाक नाम)* –ई तीन प्रकारक कर्म–संग्रह अछि ।।१८।।

गुणसभक संख्या करएबलाशास्त्र मे ज्ञान आ कर्म आओर कर्ता गुणसभक भेद सँ तीन–तीन प्रकारकहिं कहल गेल अछि, हुनका सेहो तूँ हमरा सँ नीकजकाँ सुनऽ।।१६।।

जाहि ज्ञान सँ मनुष्य अलग–अलग सभ भूतसभ मे एक अविनाशी परमआत्मभाव कैँ विभागरहित समभाव सँ स्थित देखैत छथि, ओहि ज्ञान कैँ तूँ सात्त्विक जानऽ।।२०।।

किन्तु जे ज्ञान अर्थात् जाहि ज्ञान कैँ द्वारा मनुष्य सम्पूर्ण भूतसभ मे भिन्न–भिन्न प्रकारक नाना भावसभ कैँ अलग–अलग जनैत छथि, ओहि ज्ञान कैँ तूँ राजस जानऽ ।।२१।।

परन्तु जे ज्ञान एक कार्यरूप शरीरहिं मे सम्पूर्ण कैँ समान आसक्त अछि आओर जे बिना युक्तिबला, तात्त्विक अर्थ सँ रहित आ तुच्छ अछि–ओ तामस कहल गेल अछि।।२२।।

जे कर्म शास्त्रविधि सँ नियत कएल आओर कर्तापनक अभिमान सँ रहित अछि आ फल नहिं चाहएबला पुरुष द्वारा बिना राग–द्वेष कँ कएल गेल हो–ओ सात्त्विक कहल गेल अछि।।२३।।

परन्तु जे कर्म बहुत परिश्रम सँ युक्त होइत अछि आओर भोगसभ कँ चाहएबला पुरुष द्वारा वा अहंकार सँ युक्त पुरुष द्वारा कएल गेल हो–ओ कर्म राजस कहल जाइत अछि।।२३।।

परन्तु जे कर्म परिणाम, हानि, हिंसा आ सामर्थ्य कँ नहिं बिचारि कऽ केवल अज्ञान सँ आरम्भ कएल जाइत अछि, तामस कहल गेल अछि।।२५।।

जे कर्ता संगरहित, अहंकार कँ वचन नहिं बजएबला, धैर्य आ उत्साह सँ युक्त आओर कार्य कँ सिद्ध होएबा मे आ नहिं होएबा मे हर्ष–शोक आदि विकारसभ सँ रहित छथि–ओ सात्त्विक कहल जाइत छथि।।२६।।

जे कर्ता आसक्ति, कर्मसभ के फल कँ चाहनिहार आओर लोभी छथि आओर दोसर कँ कष्ट देबाक स्वभावबला, अशुद्धाचारी आओर हर्ष–शोक सँ लिप्त छथि–ओ राजस कहल जाइत छथि।।२७।।

जे कर्ता अयुक्त, शिक्षा सँ रहित, घमंडी, धूर्त आ दोसर कँ जीविकाक नाश करएबला आओर शोक करएबला आलसी ओ दीर्घसूत्री *(जे थोड़हिं काल मे होमऽबला साधारण कार्य कँ 'बाद मे कए लेब' एहन आशा सँ बहुत काल धरि पूरा नहिं करैत छथि)* छथि–ओ तामस कहल जाइत छथि।।२८।।

हौ धनंजय! आब तूँ बुद्धिक आओर धृतिक सेहो गुणसभक अनुसार तीन प्रकारक भेद हमरा द्वारा सम्पूर्णता सँ विभागपूर्वक कहल जाएबला सुनऽ।।२९।।

हौ पार्थ! जे बुद्धि प्रवृत्तिमार्ग *(गृहस्थी मे रहैत फल आ आसक्ति कँ त्याग कए भगवान कँ अर्पण–बुद्धि सँ केवल लोकशिक्षाक लेल राजा जनकक जकाँ बरतनाइ)* आओर निवृत्तिमार्ग *(देहाभिमान कँ त्याग कए केवल सच्चिदानन्दघन परमात्मा मे एकीभाव सँ स्थित भेल श्रीशुकदेवजी एवं सनकादिक जकाँ संसार सँ उपराम लए बिचरब)* कँ, कर्तव्य आओर अकर्तव्य कँ, भय आओर अभय कँ आ बन्धन आओर मोक्ष कँ यथार्थ जनैत अछि–ओ बुद्धि सात्त्विकी अछि।।३०।।

हौ पार्थ! मनुष्य जाहि बुद्धिक द्वारा धर्म आओर अधर्म कँ आ कर्तव्य आओर अकर्तव्य कँ सेहो यथार्थ नहिं जनैत अछि–ओ बुद्धि राजसी अछि।।३१।।

हौ अर्जुन! जे तमोगुण सँ घेराएल बुद्धिक अधर्म कँ सेहो 'ई धर्म अछि' एहन मानि लैत अछि आओर एहि प्रकार सभ पदार्थसभ कँ सेहो विपरीत मानि लैत अछि, ओ बुद्धि तामसी अछि।।३२।।

हौ पार्थ! जाहि अव्यभिचारिणी धारणशक्ति *(भगवानक विषयक अलावे अन्य सांसारिक विषयसभ कँ धारण केनाइए व्यभिचारदोष अछि, ओहि दोष सँ रहित भेनाइ)* सँ मनुष्य ध्यानयोग कँ द्वारा मन, प्राण आओर इन्द्रियसभक क्रियासभ कँ धारण *(मन, प्राण आओर इन्द्रियसभ कँ भगवानक प्राप्तिक लेल भजन, ध्यान आ निष्काम कर्मसभ मे लगेनाइ)* करैत अछि, ओ धृति सात्त्विकी अछि।।३३।।

परन्तु हौ पृथापुत्र अर्जुन! फलक इच्छाबला मनुष्य जाहि धारणशक्ति कँ द्वारा अत्यन्त आसक्ति सँ धर्म, अर्थ आओर कामसभ कँ धारण करैत छथि, ओ धारणशक्ति राजसी अछि।।३४।।

हौ पार्थ! दुष्टबुद्धिबला मनुष्य जाहि धारणशक्ति कँ द्वारा निद्रा, भय, चिन्ता आओर दुःख कँ आओर उन्मत्तता कँ सेहो नहिं छोड़ैत छथि अर्थात् धारण केने रहैत छथि, ओ धारणशक्ति तामसी अछि।।३५।।

हौ भरतश्रेष्ठ! आब तीन प्रकारक सुख कँ सेहो तूँ हमरा सँ सुनऽ। जाहि सुख मे साधक मनुष्य भजन, ध्यान आओर सेवा आदि कँ अभ्यास सँ रमण करैत छथि आओर जाहि सँ दुःखसभक अन्त कँ प्राप्त भए जाइत छथि–जे एहन सुख अछि ओ आरम्भ काल मे यद्यपि विषक समान *(जेना खेल मे आसक्तिबला बच्चा कँ विद्याक अभ्यास मूढ़ताक कारण प्रथम विषक समान लगैत अछि, ओहिना विषयसभ मे आसक्तिबला पुरुष कँ भगवानक भजन, ध्यान, सेवा आदि साधनसभक मर्म नहिं जानक कारण प्रथम विषक समान लागब)* लगैत अछि मुदा परिणाम मे अमृतक समान अछि; तैँ ओहि परमात्माविषयक बुद्धिक प्रसाद सँ उत्पन्न होमऽबला सुख सात्त्विक कहल गेल अछि।।३६–३७।।

जे सुख विषय आओर इन्द्रियसभक संयोग सँ होइत अछि, ओ पहिले भोगकाल मे अमृतक समान लगितहुँ परिणाम मे विषक समान *(बल, वीर्य, बुद्धि, धन, उत्साह आ परलोक कँ नाशक भेला सँ विषय आओर इन्द्रियसभक संयोग सँ होमबला सुख कँ 'परिणाम मे विषक समान' कहल गेल अछि)* अछि; तैँ ओ सुख राजस कहल गेल अछि।।३८।।

जे सुख भोगकाल मे आओर परिणाम मे सेहो आत्मा कँ मोहित करएबला अछि–ओ निद्रा, आलस्य आओर प्रमाद सँ उत्पन्न सुख तामस कहल गेल अछि।।३९।।

पृथ्वी मे वा आकाश मे वा देवतासभ मे आओर हिनक सिवाए आओरो कतहुँओ एहन कोनो सुख नहिं अछि, जे प्रकृति सँ उत्पन्न एहि तीनू गुणसभ सँ रहित हो।।४०।।

हौ परंतप! ब्राह्मण, क्षत्रिय आओर वैश्यसभ कँ आओर शूद्रसभ कँ कर्म स्वभाव सँ उत्पन्न गुणसभ द्वारा बाँटल गेल छैन्हि।।४१।।

अन्तःकरणक निग्रह केनाइ, इन्द्रियसभक दमन केनाइ, धर्मपालनक लेल कष्ट सहनाइ, बाहर–भीतर सँ शुद्ध *(अध्याय १३; श्लोक ७ क टिप्पणी मे देखक चाही)* रहनाइ, दोसर कँ अपराध कँ क्षमा केनाइ, मन, इन्द्रिय आओर शरीर कँ सरल रखनाइ, वेद, शास्त्र, ईश्वर आओर परलोक आदि मे श्रद्धा रखनाइ, वेद–शास्त्रसभक अध्ययन–अध्यापन केनाइ आओर परमात्माक तत्त्व कँ अनुभव केनाइ–ई सभहिं ब्राह्मणक स्वाभाविक कर्म छैन्हि।।४२।।

शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता आओर युद्ध मे नहिं भगनाइ, दान देनाइ आओर राज्य केनाइ––ई सभ–कँ–सभहिं क्षत्रिय कँ स्वाभाविक कर्म छैन्हि।।४३।।

खेती, गोपालन आओर व्यापार *(क्रय–विक्रयरूप सत्य व्यवहार अर्थात् वस्तुसभ कँ खरीदए आ बेचए मे तौल, नाप आ गिनती आदि मे कम देनाइ वा अधिक लेनाइ आओर वस्तु कँ बदलि कए वा एक वस्तु मे दोसर खराब वस्तु मिला कऽ दऽ देनाइ वा नीक लऽ लेनाइ आओर नफा, आढ़त आ दलाली ठहरा कए हुनका सँ अधिक दाम लऽ लेनाइ वा कम देनाइ आओर झूठ, कपट, चोरी आ जबरदस्ती सँ वा अन्य कोनहुँ प्रकार सँ दोसर कँ हक कँ ग्रहण कऽ लेनाइ आदि दोषसभ सँ रहित जे सत्यतापूर्वक पवित्र वस्तुसभक व्यापार अछि)*–ई सभ वैश्यक स्वाभाविक कर्म छैन्हि। आओर सभ वर्णसभक सेवा केनाइ शूद्रक सेहो स्वाभाविक कर्म छैन्हि।।४४।।

अपन–अपन स्वाभाविक कर्मसभ मे तत्परता सँ लागल मनुष्य भगवानक प्राप्तिरूप परमसिद्धि कँ प्राप्त भए जाइत छथि। अपन स्वाभाविक कर्म मे लागल मनुष्य जाहि प्रकार सँ कर्म कए कऽ परमसिद्धि कँ प्राप्त होइत छथि, ओहि विधि कँ तूँ सुनऽ।।४५।।

जाहि परमेश्वर सँ सम्पूर्ण प्राणीसभ कँ उत्पत्ति भेलैन्हि अछि आओर जाहि सँ ई समस्त जगत व्याप्त अछि *(जेना बर्फ जल सँ व्याप्त अछि, ओहिना सम्पूर्ण संसार सच्चिदानन्दघन परमात्मा सँ व्याप्त अछि)* ओहि परमेश्वर कँ अपन स्वाभाविक कर्मसभ द्वारा पूजा कए कऽ *(जेना पतिव्रता स्त्री पतिए कँ सर्वस्व बुझि कऽ पति कँ चिन्तन करैत, पतिक आज्ञानुसार पतिए कँ लेल मन, वाणी, शरीर सँ कर्म करैत छथि, ओहिना परमेश्वरहिं कँ सर्वस्व बुझि कए परमेश्वरक चिन्तन करैत, परमेश्वरक आज्ञानुसार मन, वाणी आ शरीर सँ परमेश्वरहिं कँ लेल स्वाभाविक कर्तव्यकर्म कँ आचरण केनाइ)* मनुष्य परमसिद्धि कँ प्राप्त भए जाइत छथि।।४६।।

नींक प्रकार सँ आचरण कएल दोसरक धर्म सँ गुणरहितहुँ अपन धर्म श्रेष्ठ अछि, कियैक तऽ स्वभाव सँ नियत कएल स्वधर्मरूप कँ कर्म कँ करैत मनुष्य पाप कँ नहिं प्राप्त होइत छथि ।।४७।।

तँ हौ कुन्तीपुत्र! दोषयुक्त भेनहुँ सहज कर्म *(प्रकृतिक अनुसार शास्त्रविधि सँ नियत कएल जे वर्णाश्रमक धर्म आओर सामान्य धर्मरूप स्वाभाविक कर्म अछि, हुनकहिं एतऽ 'स्वधर्म', 'सहजकर्म', 'स्वकर्म', 'नियतकर्म', 'स्वभावजकर्म', 'स्वभावनियतकर्म' इत्यादि नाम सँ कहल गेल अछि)* कँ नहिं त्यागक चाही, कियैक तऽ धुआँ सँ आगिक समान सभ कर्म कोनो–ने–कोनो दोष सँ युक्त अछि।।४८।।

सर्वत्र आसक्तिरहित बुद्धिबला, स्पृहारहित आओर जीतल अन्तःकरणबला पुरुष सांख्ययोग कँ द्वारा ओहि परमनैष्कर्म्यसिद्धि कँ प्राप्त होइत छथि।।४६।।

जे कि ज्ञानयोगक परानिष्ठा अछि, ओहि नैष्कर्म्यसिद्धि कँ जाहि प्रकार सँ प्राप्त भए कऽ मनुष्य ब्रह्म कँ प्राप्त होइत छथि, ओहि प्रकार कँ हौ कुन्तीपुत्र! तूँ संक्षेपहिं मे हमरा सँ बुझऽ।।५०।।

विशुद्व बुद्धि सँ युक्त आओर हल्लुक, सात्विक आ नियमित भोजन करएबला, शब्द आदि विषयसभ कँ त्याग कए कऽ एकान्त आ शुद्व देशक सेवन करएबला सात्त्विक धारणशक्ति *(एहि अध्यायक श्लोक ३३ मे जकर विस्तार अछि)* के द्वारा अन्तःकरण आओर इन्द्रियसभक संयम कए कऽ मन, वाणी आओर शरीर कँ वश मे कए लेइबला, राग–द्वेष कँ सर्वथा नष्ट कए कऽ नीकजकाँ वैराग्य कँ आश्रय लेबऽबला आओर अहंकार, बल, घमण्ड, काम, क्रोध आओर परिग्रह कँ त्याग कए कऽ निरन्तर ध्यानयोग कँ परायण रहएबला, ममतारहित आओर शान्तियुक्त पुरुष सच्चिदानन्दघन ब्रह्म मे अभिन्नभाव सँ स्थित हेबाक पात्र होइत छथि।।५१–५३।।

फेर ओ सच्चिदानन्दघन ब्रह्म मे एकीभाव सँ स्थित, प्रसन्न मनबला योगी ने तऽ ककरो लेल शोक करैत छथि आ ने ककरहुँ आकांक्षहिँ करैत छथि। एहन समस्त प्राणीसभ मे समभावबला *(अध्याय ६ः श्लोक २६ मे देखक चाही)* योगी हमर पराभक्ति *(जे तत्त्वज्ञानक पराकाष्ठा अछि आ जकरा प्राप्त भएकऽ आओर किछु जानब बाँकी नहिं रहैत अछि, वैह एतऽ 'पराभक्ति', 'ज्ञानक पराकाष्ठा', 'परमनैष्कर्म्यसिद्धि' आओर 'परमसिद्धि' इत्यादि नाम स कहल गेल अछि)* कँ प्राप्त भए जाइत छथि।।५४।।

ओहि पराभक्ति कँ द्वारा ओ हमरा–परमात्मा कँ, हम जे छी आओर जतेक छी, ठीक ओहिना कँ ओहिना तत्त्व सँ जानि लैति छथि; आओर ओहि भक्ति सँ हमरा तत्त्व सँ जानि कए तत्कालहिं हमरा मे प्रविष्ट भए जाइत छथि।।५५।।

हमर परायण भेल कर्मयोगी तऽ सम्पूर्ण कर्मसभ कँ सदा करितहु हमर कृपा सँ सनातन अविनाशी परमपद कँ प्राप्त भए जाइत छथि ।।५६।।

सभ कर्मसभ कँ मन सँ हमरा मे अर्पण कए कऽ *(अध्याय ९: श्लोक २७ मे जकर विधि कहल गेल अछि)* आओर समबुद्धिरूप योग कँ अबलम्बन कए कऽ हमर परायण आओर निरन्तर हमरा मे चिन्तनबला हुअऽ।।५७।।

उपर्युक्त प्रकार सँ हमरा मे चिन्तनबला भए कऽ तूँ हमर कृपा सँ समस्त संकटसभ कँ अनायासहिं पार कए जेबह आओर यदि अहंकारक कारण हमर वचन कँ नहिं सुनबह तऽ नष्ट भए जेबह अर्थात् परमार्थ सँ भ्रष्ट भए जेबहऽ।।५८।।

जँऽ तूँ अहंकारक आश्रय लएकऽ ई मानि रहल छऽ कि 'हम युद्ध नहिं करब', तऽ तोहर ई निश्चय मिथ्या छऽ; कियैक तऽ तोहर स्वभाव तोरा जबर्दस्ती युद्ध मे लगा देतऽ।।५९।।

हौ कुन्तीपुत्र! जाहि कर्म कँ तूँ मोहक कारण करए नहिं चाहैत छऽ, ओकरहुँ तूँ अपन पूर्वकृत स्वाभाविक कर्म सँ बन्हल परवश भए कऽ करबऽ।।६०।।

हौ अर्जुन! शरीररूप यन्त्र मे आरूढ़ भेल सम्पूर्ण प्राणीसभ कँ अन्तर्यामी परमेश्वर अपन माया सँ हुनक कर्मसभ कँ अनुसार भ्रमण करबैत सभ प्राणीसभ कँ हृदय मे स्थित छथि।।६१।।

हौ भारत! तूँ सब प्रकार सँ ओहि परमेश्वरहिं कँ शरण *(लाज, भय, बड़ाइ आओर आसक्ति कँ त्याग कए आओर शरीर आ संसार मे अहंता, ममता सँ रहित भएकऽ केवल एक परमात्महिं कँ परम आश्रय, परम गति आओर सर्वस्व बुझनाइ आओर अनन्यभाव सँ अतिशय श्रद्धा, भक्ति आओर प्रेमपूर्वक निरन्तर भगवान कँ नाम, गुण, प्रभाव आओर स्वरूप कँ चिन्तन करैत रहनाइ आओर भगवानक भजन, स्मरण रखितहिं हुनक आज्ञानुसार कर्तव्यकर्मसभ कँ निःस्वार्थ भाव सँ केवल परमेश्वरक लेल आचरण केनाइ)* मे जाऽ। ओहि परमात्मा कँ कृपा सँ तूँ परमशान्ति कँ आओर सनातन परमधाम कँ प्राप्त हेबऽ।।६२।।

एहि प्रकार ई गोपनीय सँ सेहो अति गोपनीय ज्ञान हम तोरा सँ कहि देल। आब तूँ एहि रहस्ययुक्त ज्ञान कँ पूर्णतया नीकजकाँ विचारि कए, जेना चाहैत छऽ, ओहिना करऽ।।६३।।

सम्पूर्ण गोपनीयसभ सँ सेहो अति गोपनीय हमर परम रहस्ययुक्त वचन कँ तूँ फेरो सँ सुनऽ। तूँ हमर अतिशय प्रिय छऽ, तैँ ई परम हितकारक वचन हम तोरा सँ कहबऽ।।६४।।

हौ अर्जुन! तूँ हमरा मे मनबला हुअऽ, हमर भक्त बनऽ, हमर पूजनकरएबला हुअऽ आओर हमरा प्रणाम करऽ। एना कएला सँ तूँ हमरहिं प्राप्त हेबह, ई हम तोरा सँ सत्य प्रतिज्ञा करैत छी; कियैक तऽ तूँ हमर अत्यन्त प्रिय छऽ।।६५।।

सम्पूर्ण धर्मसभ कँ अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मसभ कँ हमरा मे त्यागि कए तूँ केवल एक हमरा—सर्वशक्तिमान, सर्वाधार परमेश्वरहिं कँ शरण *(एहि अध्यायक श्लोक ६२ क टिप्पणी मे एकर भाव देखक चाही)* मे आबि जाऽ। हम तोरा सम्पूर्ण पापसभ सँ मुक्त कए देबऽ, तूँ शोक जुनि करऽ।।६६।।

तोरा एहि गीतारूप रहस्यमय उपदेश कोनहुँ काल मे ने तऽ तपरहित मनुष्य सँ कहक चाहियऽ, नहिंए भक्ति *(वेद, शास्त्र आओर परमेश्वर आ महात्मा आओर गुरुजनसभ मे श्रद्धा, प्रेम आ पूज्यभावक नाम)* रहित सँ आ ने बिना सुनक इच्छाबला सँ सेहो कहक चाहियऽ; आओर जे हमरा मे दोषदृष्टि रखैत छथि, ओकरा तऽ कदापि नहिं कहक चाहियऽ।।६७।।

जे पुरुष हमरा मे परम प्रेम कए कऽ एहि परम रहस्ययुक्त गीताशास्त्र कँ हमर भक्तसभ सँ कहत ओ हमरहिं प्राप्त होयत—एहि मे कोनो सन्देह नहिं अछि।।६८।।

ओहि सँ बढ़ि कए हमर कोनो प्रिय कार्य करएबला मनुष्यसभ मे कियो नहिं अछि; आओर पृथ्वीभरि मे ओकरा सँ बढि कए हमर प्रिय कियो भविष्य मे हेबो नहिं करऽत।।६६।।

जे पुरुष एहि धर्ममय हमरा दुनुक संवादरूप गीताशास्त्र कँ पढ़ताह, हुनका द्वारा सेहो हम ज्ञानयज्ञ *(अध्याय ४: श्लोक ३३ क अर्थ देखक चाही)* सँ पूजित होएब–एहन हमर मत अछि।।७०।।

जे मनुष्य श्रद्धायुक्त आओर दोषदृष्टि सँ रहित भए कऽ एहि गीताशास्त्र कँ श्रवणहुँ करताह, ओहो पापसभ सँ मुक्त भए कऽ उत्तम कर्म करएबलासभक श्रेष्ठ लोकसभ कँ प्राप्त हेताऽह।।७१।।

हौ पार्थ! की एहि *(गीताशास्त्र)* कँ तूँ एकाग्रचित्त सँ श्रवण केलऽह अछि? आओर हौ धनंजय! की तोहर अज्ञानजनित मोह नष्ट भए गेलऽह अछि?।७२।।

अर्जुन बजलाह–

यौ अच्युत! अहाँक कृपा सँ हमर मोह नष्ट भए गेल आओर हम स्मृति प्राप्त कए लेलहुँ अछि, आब हम संशयरहित भए कऽ स्थित छी, तँ अहांक आज्ञाक पालन करब।।७३।।

संजय बजलाह–

एहि प्रकार हम श्रीवासुदेव कँ आओर महात्मा अर्जुन कँ एहि अद्भुत रहस्ययुक्त, रोमांचकारक संवाद कँ सुनल।।७४।।

श्रीव्यासजीक कृपा सँ दिव्यदृष्टि पाबि कए हम एहि परम गोपनीय योग कँ अर्जुन कँ प्रति स्वयं योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण सँ प्रत्यक्ष सुनलहुँ अछि।।७५।।

यौ राजन्! भगवान श्रीकृष्ण आओर अर्जुनक एहि रहस्ययुक्त, कल्याणकारक आओर अद्भुत संवाद कँ पुनः–पुनः स्मरण कए कऽ हम बेर–बेर हर्षित भए रहल छी।।७६।।

यौ राजन्! श्रीहरि *(जिनक नाम स्मरण कएला सँ पापसभक नाश होइत अछि)* कँ ओहि अत्यन्त विलक्षण रूप कँ सेहो पुनः–पुनः स्मरण कए कऽ हमर चित्त मे महान आश्चर्य होइत अछि आओर हम बेर–बेर हर्षित भए रहल छी।।७७।।

यौ राजन्! जहाँ योगेश्वर भगवान कृष्ण छथि आओर जहाँ गाण्डीव–धनुषधारी अर्जुन छथि, ओतहि श्री, विजय, विभूति आओर अचल नीति अछि–एहन हमर मत अछि।।७८।।

एना भगवान द्वारा गायल उपनिषद, ब्रह्मविद्या, योगशास्त्र मे, श्रीकृष्ण आ अर्जुनक बीच भेल संवाद ***मोक्षसंन्यासयोग*** *नामक* ***अठारहम*** *अध्याय समाप्त भेल।*

हरि ओऽम तत्सत्।। हरि ओऽम तत्सत्।। हरि ओऽम तत्सत्।।

(अपन स्वर्गीया माता निर्मला देवीक स्मृति मे समौल, मधुबनी, मिथिलावासी डॉ॰ धनाकर ठाकुर, एम॰ बी॰ बी॰एस॰, एम॰डी॰, डी॰ सी॰ एच॰, द्वारा बेंगलूरु मे मातृभाषा मैथिली मे अनुदित श्रीमद्भगवद्गीता कँ आश्विन कृष्ण ४, २०६३ विक्रम संवत तदनुसार ११/६/२००६ खीष्टाब्द–विवेकानन्द शिकागो वर्क्तिता ११३ म दिवस/आचार्य बिनोबा भावेक १११ म जयन्ती/गांधी अफ्रिका सत्याग्रह शताब्दी दिवस/महाकवि सुब्रमणियम भारतीक ८५ म पुण्यतिथि/ विश्व व्यापार केन्द्र विनाश पाँचम तिथि कऽ संगणक मे स्वयं–अंकणपूर्त्ति पूरा भेल।)